ता

डॉ० मिथिलेश कुमारी मिश

छँटता कोहरा

(डॉ० मिथिलेश कुमारी मिश्र की एक सौ एक लघुकथाएँ)

लेखिका

डॉ० मिथिलेश कुमारी मिश्र



वाणी वाटिका प्रकाशन

सैदपुर, पटना-800004

वाणी वाटिका प्रकाशन
सैदपुर, पटना-800004
दूरभाष : 0612-663504

लेखिका	डॉ॰ मिथिलेश कुमारी मिश्र
कॉपीराइट	लेखिका
सस्करण	25 अगस्त, 2002
मूल्य	100.00 रुपये मात्र
लेजर टाइप	नवीन कम्प्यूटर्स महेन्द्रू, पटना-800006 दूरभाष : 0612-661552
मुद्रक	बिहार सेवक प्रेस महेन्द्रू, पटना-800006 मोबाइल स॰ 0-9875036228

CHHANTATA KOHRA (Collection of Storiettes)
by Dr MITHILESH KUMARI MISHRA

अपने इकलौते पुत्र
आयुष्मान् नीलाभ को
उसके प्रथम जन्म-दिवस के
पावन उत्सव पर
अशेष आशीर्वचनों सहित

–मिथिलेश कुमारी
25 अगस्त, 2002

पुनः आपके समक्ष मैं

किसी भी लेखक का सबसे बडा सौभाग्य यह होता है कि वह जो कुछ भी लिखता या अपनी रचनाओ मे कहना चाहता है, वह जब हू-ब-हू पाठको तक सम्प्रेषित होकर उनका स्नेह एव प्रशंसा पाने में सफल हो जाता है । बहुत ही विनम्रता से कहना चाहूँगी कि मेरा पूर्व प्रकाशित लघुकथा-संग्रह 'अधेरे के विरुद्ध' को वह सौभाग्य प्राप्त हुआ । अपेक्षा से कही अधिक मिला । जहाँ यह प्रसन्नता की बात है, वही मुझ पर अभिव्यक्त पाठकों का विश्वास एक दायित्व भी दे गया कि मुझे 'अधेरे के विरुद्ध' से आगे की यात्रा भी तय करनी है । मैंने प्रयास किया और दो वर्षो क पश्चात् एक सौ एक लघुकथाओ का दूसरा सग्रह 'छँटता कोहरा' लेकर पुनः आपके समक्ष उपस्थित हूँ ।

यों अपनी कृति पर स्वय कोई टिप्पणी नही देनी चाहिए, सब कुछ पाठको पर ही छोड देना चाहिए । परन्तु जब स्वय पाठक स ही लेखक से यह आग्रह करने लगे, तो लेखक की विवशता हो जाती हे । 'अधेरे के विरुद्ध' पर लेखकीय के पक्ष मे अनेक उत्साहवर्द्धक पत्र आये, समीक्षको ने भी प्रोत्साहित किया कि वे मेरे दृष्टिकोण से परिचित होते हुए मेरी लघुकथाओं को उसी आलोक मे देखकर उसके प्रति न्याय करने में सुविधा प्राप्त कर सके । उनकी इस प्रकार की टिप्पणियो मे निःसन्देह पुनः मुझे कुछ कहने हेतु बल मिला है ।

'अंधेरे के विरुद्ध' मे मैने स्पष्ट किया था कि मैं लघुकथा को क्या समझती हूँ । मैने अपनी सुविधानुसार इसे परिभाषित करने का दुस्साहस भी किया था । यहाँ मै इसे दोहराने के बजाय यह बताना चाहती हूँ कि प्रस्तुत सग्रह मे प्रकाशित मेरी तिरानबे लघुकथाओं का आधार निम्नांकित सात तत्त्व है :-

1. एक ही प्रभावशाली पूर्ण आवयविक घटना या फिर एक ही विचार, 2 उस घटना या विचार से सम्बद्ध पात्र, 3 उन पात्रो का बाह्य तथा मानसिक द्वन्द्व, 4. बाह्य तथा मानसिक द्वन्द्व को स्पष्ट करने वाली भावानुरूप भाषा-शैली, 5 एक ही परिणाम या प्रभाव, 6. क्षिप्र एव लाघव जिसमे एक क्षण के कथानक को प्रस्तुत करने में शब्दो का अपव्यय न हो । 7 शीर्षक, जो रचना का अभिन्न अग बनकर उभरे ।

'अधेरे के विरुद्ध' के सृजन-काल मे ही अनेक ऐसी लघुकथाएँ छूट गयी थी, जिन्हे उस सग्रह मे शामिल नही कर पायी थी । छूट गयी लघुकथाएँ श्रेष्ठ पत्र-पत्रिकाओ मे स्थान पा गयीं, तो मेरा उत्साह बढा और मैंने पुनः लघुकथा-सृजन आरभ कर दिया । मैंने प्रयास किया कि प्रस्तुत सग्रह की 101 लघुकथाएँ अनावश्यक विस्तार से बचे तथा पूर्व सग्रह स आगे की चीज हो – उसका अगला कदम हो । अपने उद्देश्य मे सफलता कहाँ तक प्राप्त हो सकी हे, यह तो मुझे आपके पत्रो एव समीक्षाओ द्वारा ही ज्ञात होगा । मुझे यह स्वीकार करने मे सकोच नही है कि पूर्व सग्रह पर प्रकाशित आपके पत्र एव समीक्षाओ ने मेरा पर्याप्त मार्ग-दर्शन किया है । मैने इस सग्रह की लघुकथाओं मे यथासंभव आपकी अनेक बातो पर ध्यान देने का भी प्रयास किया है ।

पूर्व सग्रह की भाँति ही इस सग्रह की लघुकथाओ के शीर्षको पर पर्याप्त ध्यान दिया गया है । इस सग्रह की लघुकथाएँ अपने शीर्षको की सार्थकता सिद्ध कर सकेंगी, ऐसा विश्वास है ।

इस सग्रह की लघुकथाओ म विषय वैविध्य है । बात कहने हतु किसी कार्यालय स्कूल-विद्यालय या अन्य स्थानो को जहाँ, जब जैसा माध्यम बनाना उपयुक्त लगा—मैंन उपयाग किया है । 'प्रेम' स मेरा तात्पर्य 'शाश्वत प्रेम' से है । प्रेम क अनेक शड्स पूर्व सग्रह म दिये गये थे, कुछ इसमे भी प्रस्तुत किए जा रहे है । चूँकि अब मै एक माँ भी हूँ, अत मातृत्व की भावना या इस विषय से जुड़ी लघुकथाएँ भी यदि इसमे आ गयी है, ता इसम अस्वाभाविक क्या है ? फिर 'छँटता कोहरा' तो मैंने अपने इकलौत पुत्र नीलाभ को ही उसके प्रथम जन्म-दिवस के अवसर पर समर्पित किया है । अत:, यह शिशु भी कही-कही अपनी भूमिका कभी यथार्थ, तो कभी कल्पना मे निर्वाह करता प्रतीत होता है जो मुझे तो अच्छा लगता ही है, शायद आपका भी अच्छा लग ।

अपनी लघुकथाओ क पात्रो के विषय मे भी कुछ कहना अप्रासगिक न होगा । मेरी लघुकथाओ के पात्र प्राय: आसपास के हे । वह साक्षात् हो एसा आवश्यक नही है, कल्पना म भी गढे गये है । प्रत्यक पात्र का नाम सोच समझकर रखा गया हे । प्राय: लघुकथाओ की नायिका 'मै' है । यहाँ 'मै' से तात्पर्य मै से न होकर अन्य कोई थर्ड पर्सन हो सकता हे । वह 'मै' पात्र आप भी हो सकत हें या अन्य कोई भी ।

लघुकथाओ मे आये विचार प्राय: शाश्वत है या फिर उनका सम्बन्ध मनोविज्ञान से है कही किसी लघुकथा मे स्वयं मेरे भी हो सकते है । घटनाएँ सत्य हो, ऐसा प्राय: नही है । घटनाएँ विश्वसनीय लगे, यह प्रयास अवश्य ही रहा हे । कल्पना एव नाटकीयता का सहारा नही लिया गया है—ऐसा कहना मेरे लिए सम्भव नही है । मेरी अपनी मान्यता है कि कथा को कथा के रूप मे ही पढ़ा जाना चाहिए और यदि उसमे आपका किसी भी प्रकार का 'रस' प्राप्त हो, यह मेरा सौभाग्य होगा । बिना 'रस' की रचना प्राय: निर्जीव-सी हो जाती है और फिर वह पाठको से अपना सरोकार बना पाने मे भी अक्सर पिछड जाती है—यह किसी भी रचना का दुर्गुण माना जाता है ।

इस सग्रह की लघुकथाएँ अपनी पहचान बना सकेगी, ऐसा मेरा विश्वास है । हाँ । यह सभव है इन लघुकथाओ में कही-कही किसी विशेष लघुकथा-लखक का प्रभाव परिलक्षित हा जाए । मै अपनी इन लघुकथाओं के प्रथम पाठक डॉ० सतीशराज पुष्करणा के प्रति अपना आभार व्यक्त करती हूँ, उचित निर्देश देकर इन्हे बेहतर बनाने मे अपना अमूल्य योगदान दिया । उन्हे आभार व्यक्त न करना रचनाधर्मिता के प्रति बे-ईमानी होगी । अग्रज श्री कृष्णानन्द कृष्ण के प्रति भी आभार जिन्होने इस सग्रह के शीर्षक-चुनाव मे महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया । इनके अतिरिक्त अग्रज श्री नरेन्द्र प्रसाद 'नवीन' भी धन्यवाद के पात्र ह जिन्होंने इस पुस्तक का शब्द-सयोजन बहुत ही सुन्दर ढग से किया ।

लघुकथाओ के विषय मे क्या कहूँ—इनमे यदि थोड़ा भी दम-खम है, तो वे पाठको एव समीक्षको की राय अपने पक्ष मे कर ही लेगी — उनका स्नह अर्जित कर ही लेगी ।यदि इन लघुकथाओ में मे कुछ भी अपने उद्देश्य म सफलता प्राप्त कर लेती हैं, तो मै अपना श्रम एव प्रयास सार्थक समझूँगी । इन लघुकथाओ मे जो कमियाँ रह गयी हो, अवगत कराने की कृपा करेंग—भावी सग्रहो मं वे न रहे — यह प्रयास अवश्य ही रहेगा । ❑

❑ सम्पादक: परिषद्-पत्रिका (त्रै०)
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
आचार्य शिवपूजन सहाय मार्ग, पटना-800004

-मिथिलेश कुमारी मिश्र
15 जुलाई, 2002

अनुक्रम

छँटता कोहरा

घर आते ही पर्स एक ओर फेंक मैं आँगन मे पड़ी खाट पर लेट गयी । मुझे इस प्रकार थक-हार कर लेटे देख माँ ने पूछा, "क्या हुआ मानवी । मिनिस्टर साहब ने क्या कहा ?"

मूड बहुत खराब था. किसी से बात करने का मन नही था किन्तु माँ से क्या कहती । अतः, अनमने ही कहा, "आज भी वही कहा काम हो जायेगा. कल मिलिए ।"

"इस मिनिस्टर का कल जाने कब आयेगा ?" माँ ने आक्रोशमय स्वर मे पूछा ।

"क्या कह सकती हूँ माँ ! पुरुष होती तो चिन्ता नही थी, जहाँ भी ट्रासफर करते, चली जाती ...किन्तु मै लडकी होकर सुदूर गाँव मे कैसे जा सकती हूँ ?"

"बेटी । यही वह स्थिति है, जहाँ लडकी होना माँ-बाप को कष्ट देता है. नहीं तो ऐसा थोडे ही है कि लडकियाँ रात मे उठ-उठकर खाती हैं ।"

"लगता है माँ ! मेरा ट्रासफर नही रुकेगा ...मुझे या तो जाना ही होगा .....या फिर नौकरी छोडनी पडेगी ।"

"नौकरी ही छोड देना । मै तुम्हे सुदूर गाँव मे अकेली तो किसी कीमत पर नही भेजूँगी, जैसे भी हो, गुजारा करेंगे ...तू चिन्ता मत कर बेटी . सब ठीक हो जायेगा ।"

माँ की बातो से मेरी हिम्मत बँधी . लगा मै विवश नही हूँ । 'विवश' शब्द मन मे आते ही मुझे मिनिस्टर का चेहरा स्मरण हो आया, जब उसने मुझसे कहा था, "काम हो जायेगा....कल मिलिए ।" इतना कहने के साथ ही वह जिस तरह मुस्कराया था उससे स्पष्ट था कि ...अन्यथा क्या बात है कि कई माह से रोज एक ही उत्तर "कल मिलिएगा...काम हो जायेगा . यह कब तक चलेगा ...?"

"क्या सोच रही है मानवी ? उठ फ्रेश हो जा.. फिर कुछ खा-पी ले .. .सबेरे से गयी है.. भूख लगी होगी ।" माँ ने बहुत ही वात्सल्यपूर्ण ढंग से कहा ।

मैने निर्णय ले लिया कि मै न तो त्याग-पत्र दूँगी और न सुदूर गाँव मे ड्यूटी ज्वॉयन करूँगी ....न ही उस मिनिस्टर स मिलूँगी. ..अब तो मैं महिला आयोग या कोर्ट की शरण लूँगी । यह सोचकर मै उठी और वकील को फोन करने पी०सी०ओ० की ओर चल पड़ी ।

स्वाभिमान की राह

अरे भई ! तुम लोग अभी तक यहाँ बैठकर क्या कर रहे हो ?'' इजीनियरिंग कॉलज के हॉस्टल के एक कमरे मे बैठे अनेक मित्रो के मध्य चल रही बातचीत के क्रम को भग करते हुए सुगन्ध ने प्रवेश किया ।

सुगन्ध के प्रवेश करते ही सब लोगों का ध्यान उसकी ओर चला गया । उनमे से मिताली ने प्रसन्नतापूर्वक कहा, ''अरे यार ! हम लोग तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहे थे ।''

''क्यो ! कोई विशेष बात है ?''

''देखो न ! (अखबार आगे बढ़ाते हुए) रेलवे मे हम लोगो के लिए अनेक जगह निकली है. आरक्षण की सुविधा भी है ही सलेक्शन पक्का समझो ।''

''बुरा न मानना साथियो ! तुम्हारी इस मानसिकता से मेरा स्वाभिमान आहत हुआ है ।''

''क्यों ?''

''अरे ! हम लोग किससे कम है ? अन्य लोगो से हमने क्या कम पढ़ा है ? क्या हम मे प्रतिभा नहीं है ? खैर. तुम लोग चाहे जो सोचो .मै सामान्य लोगो की तरह ही एपीयर होकर अपनी प्रतिभा एव कर्मठता सिद्ध करूँगा. मुझे विश्वास है मेरा सलेक्शन होगा ही फिर रेलवे मे ही क्यो ? सरकार हमे कितना देगी ?''

''तो क्या करोगे तुम ?' सामूहिक स्वर मे सभी ने पूछा । ''हम लोगो का अन्तिम वर्ष समाप्त हो गया है .श्रेष्ठ अको से हम उत्तीर्ण होगे ही. मल्टीनेशनल कम्पनी वाले कैम्पस सलेक्शन के लिए आयेंगे. उनमे जो अधिक पैसे देगा, वही ज्वॉइन कर लेगे .समझे ।''

''आरक्षण का लाभ लेने मे क्या हर्ज है ?''

''हर्ज है. हमारा स्वाभिमान आहत होता है .इससे यही पता चलता है .हम लोग कमजोर एव प्रतिभाहीन है. जीवन भर यही एहसास हमे कुंठित करता रहेगा . हम कोटे से आये है । छि: ! लानत भेजो .मै तो इस कोटे-वोटे मे विश्वास नही करता ।''

''वाह साथी ! वाह !! क्या बात है. मै भी कोटे का लाभ नही लूँगी. मै भी अपनी प्रतिभा सिद्ध करूँगी. हम क्या किसी से कम है. मैं तुम्हारे साथ हूँ ।'' यह थी मिताली । ❁

हर शाख पे

किसी की रिपोर्ट पर रेलवे विजलेंस के अधिकारी ने पटना ज० पर कार्यरत टी० सी० रामेन्द्र को घूस लेते हुए पकड़ लिया और उसे पूछताछ हेतु कार्यालय में लाया गया। सर्वप्रथम एक चार्जशीट देकर उसे हस्ताक्षर करके एक प्रति लौटाने को कहा। चार्जशीट अंग्रेजी में लिखी हुई थी।

रामेन्द्र ने उस चार्जशीट को ऊपर से नीचे तक बार-बार देखा, मगर उसकी समझ में कुछ नही आया कि इसमे क्या लिखा हुआ है ? अतः, उसने पूछ ही लिया, "सर। हिन्दी मे समझा दीजिए।"

"क्यो ? तुम अंग्रेजी नही समझ पाते हो ?"

"नही सर !"

"तुम तो बी० ए० पास हो न ?"

"जी सर !"

"तो फिर.. ?"

"सर। आपसे क्या छिपाना ?"

"चोरी से सारी परीक्षाएँ पास की थीं . मैं ही क्या तमाम लड़के ऐसे ही ।"

"कमीशन की रिटन परीक्षा ?"

अब तक विजलेंस अधिकारी ढीला पड़ चुका था. उसे हँसी आ गयी और कुछ क्षणोपरान्त उसने पुनः पूछा, "कितना पैसा दिया था ?"

"ढाई लाख..!"

"इतना पैसा था . तुम्हारे पिता के पास ?"

"कुछ था, कुछ जमीन बेचकर, कुछ कर्ज लेकर.. ।"

"इतना पैसा देकर नौकरी पाने मे तुम्हे क्या लाभ हुआ ?"

"सर ! शादी में कम-से-कम पाँच लाख मिलेगा और बाकी सर .अभी शुरु किया था कि आपने धर लिया .।"

विजलेंस अधिकारी अब बहुत ही सहज हो चुका था, "अब तक कितना कमा चुके हो ?"

"अधिक नही सर। दो महीने मे कितना कमाते .करीब दस हजार...सर आपसे झूठ नही बोलूँगा।" रामेन्द्र भी अबतक सहज हो चुका था।

"तुम्हारे जैसे अन्य लोग भी इसी तरह रेलवे मे आ गये होंगे ?"

"जी एकाध नहीं .. सैकड़ो . ऊपर से नीचे तक सभी मिले रहते है।"

विजलेंस अधिकारी को लगा इसमे और अधिक पूछताछ कर इस पर कार्रवाई का कोई अर्थ नही होगा . इसी प्रकार यह मुक्त भी हो जाएगा . . मैं अपनी प्रतिष्ठा क्यों खोऊँ ? अतः, उसने रामेन्द्र से चार्जशीट लेकर कहा, "जाओ। अपना काम करो ..।"

जागरूकता

मै पटना मेडिकल कॉलेज एव अस्पताल से होते हुए गान्धी मैदान जा रही थी कि अस्पताल के मुख्य-द्वार पर काफी कोहराम मचा हुआ है । पहले तो मैने सोचा . अरे होगा कुछ मुझ क्या लेना देना. . फिर मन ने कहा नही, आज जरूर कुछ बड़ी वारदात हुयी है तभी यह स्थिति है । मुझसे रहा न गया तो मैने रिक्शा वही छोड दिया और क्या हुआ है यह जानने हेतु आगे बढ गयी । वहाॅ देखा तो अनेक महिलाएँ पुरुष, बच्चे, वृद्ध, वृद्धाएँ दहाडे मार-मारकर रो रहे थे । मेरा मन द्रवित हो उठा ।

वहीं खड़े एक परिचित पत्रकार मे पूछा, ''सजय जी । क्या हुआ है ?''

''अरे । आपने आज का समाचार-पत्र नही देखा... मुख्य पृष्ठ पर ही तो सेनारी मे पुलिस उत्पीडन-काड'' मुख्य लीड है ।

मुझे अपने साहित्यकार होने पर ग्लानि हो आयी । आज जल्दी-जल्दी मे घर से निकल पडी.. समाचार-पत्र उठाकर देखने का अवसर नहीं मिला.मै सोचने लगी जिस राज्य की मुख्यमत्री महिला हो.. वहाॅ भी महिलाएँ असुरक्षित हो तो.. ईश्वर जाने क्या होगा ?

मै एक उत्पीडित महिला के पास पहुॅची, ''क्या हुआ है ?'' उसने मुँह से एक शब्द नही कहा, बस साडी उठाकर जाॅघ दिखा दी मन आक्रोश से भर गया । महिला, जो जननी है जिस पुलिस ने उसे पीटा, उसे जन्म देने वाली भी महिला ही रही होगी. उसकी बहिन भी महिला ही होगी.. उसकी बेटी भी छि: । लानत है ऐसे मर्द पर ! जो न सोचते-समझते मेरे मुॅह से निकल गया, ''ये लोग आदमी नही राक्षस है... रावण और कंस भी शायद ऐसे नही रहे होगे ।

''एक पुलिसकर्मी जिसने मेरी बात सुन ली थी । पास आकर बोला, ''मेम साहब । हम लोग आदमी नही.. पुलिस है. जैसा ऑर्डर मिलता है, वैसा करते है ''

''क्या तुम लोग आदमी नही हो ?'' मैने व्यग्यात्मक लहजे मे पूछा ।

''यदि हमलोग भी आदमी हो जाएँगे.. तो हमसे भय कौन खाएगा ?''

''काश ! तुम्हारी माँ-बहन भी सेनारी गाॅव की होती.. और उनके साथ भी...''

''चोप्प रहिए मैडम !. ''

''सुनो सिपाही ! यह आवाज सिर्फ मेरी आवाज नही है... पूरे राज्य की आवाज है जो धीरे-धीरे स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ रही है.. उसे एकत्रित हो जाने दो.. फिर देखती हूँ तुम किस-किस को चुप कराओगे .।'' मेरी आवाज सुनकर भीड़ मेरे ईर्द-गिर्द इकट्ठा होने लगी... इस कांड के विरुद्ध बुलद आवाज मे नारेबाजी आरंभ हो गयी थी । ❁

छद्मवेशी

'अपना देश' पत्रिका हिन्दी की कतिपय श्रेष्ठ पत्रिकाओ मे एक है, जिसने हिंन्दी-कहानी को न मात्र विकास दिया है, अपितु एक सार्थक नयी दिशा भी दी है. इस पत्रिका मे किसी कहानी का प्रकाशित होना अपने मे एक उपलब्धि माना जाता है।

मैं अरुण का भाषण सुन आश्चर्यचकित थी कि यह कैसा आदमी है। अभी पिछले सप्ताह ही तो कह रहा था, '' 'अपना देश' भी कोई पत्रिका है। मै तो इसमे अपनी कहानी तक भेजना अपना अपमान समझता हूँ..यह तो मात्र छुटभैयो की पत्रिका है।''

मैं सोचने लगी यह कैसा विरोधाभास है। मौसम को बदलने मे भी कुछ वक्त लगता है मगर इसने तो बदलने में तनिक भी देर नही लगायी। यदि 'अपना देश' छुटभैयो की पत्रिका है तो उसके सम्पादक के सम्मान मे गोष्ठी-आयोजन की तुक ?

गोष्ठी अपने शिखर पर पहुँच रही थी। अब 'अपना देश' के सम्पादक को बोलने हेतु आमन्त्रित किया गया। वह माइक पर आये और कहने लगे, ''अरुण जी ने मुझे यहाँ बुलाकर मेरे सम्मान मे गोष्ठी का आयोजन किया। मै इनका आभारी हूँ, किन्तु मुझे दुःख है कि अरुण जी ने भी अपनी कहानी भेजी, किन्तु मै उसका उपयोग नही कर सका। आज जो रचना दी है.. उसपर बाद मे विचार करूँगा। लेखक यह चाहे जैसे भी हो, किन्तु व्यक्ति अच्छे हैं. ..मेरी सारी सुविधाओं का ध्यान रखा....व्यक्ति अच्छा होना भी महत्त्वपूर्ण होता है।'' सम्पादक के भाषण पर जोरदार तालियाँ बजी।

सहसा मेरी दृष्टि अरुण पर चली गयी, जिसके हाथ तो तालियाँ बजा रहे थे, लेकिन चेहरा कुछ और ही तरह का हो गया था। मुझे बहुत अजीब-सा लगा, और मै बीच मे ही उठकर चली गयी। ●

तमाचा

मेरे घर पर पॉच-छः साहित्यकार बैठे थे । हमलोग साहित्यिक चर्चा मे मगन थ कि एक साहित्यिक मित्र आए और कहने लगे, "आपलाग यहॉ बैठे गप्पे हॉक रहे है और वहॉ जुलूस मे आपलोगो की प्रतीक्षा हो रही है उठिए । जल्दी चलिए..।"

सभी बैठे हुए सहित्यिक बन्धुओ ने मेरी ओर देखा कि क्या कहना है.. मैने बहुत ही शालीनता से कहा, "आप चलिए ! हमलोग थोड़ी देर मे आते है ।"

मेरा उत्तर सुनकर वह उखड़ गया । "आप भी हद करती है.. किसी के दु:ख-दर्द से आपको कुछ लेना-देना नही है. आप अखबार नही पढती हैं क्या ?"

मैने धैर्य बनाए रखा. पुनः शालीनता से कहा, "अखबार भी पढती हूँ... दु:ख-दर्द भी समझती हूँ.. किन्तु मेरे मन मे किसी प्रकार का स्वार्थ नही है... मेरे लिए आदमी का महत्त्व है वह कितना बड़ा है. अथवा छोटा है . मेरे लिए मायने नही रखता ।"

मेरी बात सुनकर वह बुरी तरह उखड गया. आप साफ-साफ कहे क्या कहना चाहती है घुमा-फिराकर बात करने की आपकी आदत कब छूटेगी ?"

"तो सुनिए ! आज मत्री का बेटा एक दुर्घटना मे मर गया, तो आप उनके समर्थन मे जुलूस निकालेगे.. 'हत्यारो को फाँसी दो' के नारे लगाएँगे... मै आपसे पूछती हूँ... एक वर्ष पूर्व मेरे घर की बगल मे एक मजदूर को छत से फेंक दिया गया था.. यदि आपको स्मरण हो तो मैंने आप सभी से इसके पक्ष मे जुलूस एव प्रदर्शन करने का निवेदन किया था ताकि उस गरीब परिवार को सरकार से कुछ दिलाया जा सके ।"

वह चुपचाप खड़े... छत की ओर देखने लगे थे... मैने पुनः कहना शुरू किया, "अगर आप भूल न गए हो तो शायद आपने कहा था कि पटना जैसे बड़े शहर मे ऐसे हादसे आम है, रोज-रोज यदि हर व्यक्ति के लिए हमने ये सब करना शुरू किया तो हो गया.. आप लागो ने मेरा साथ नहीं दिया था, याद है ?"

मैने देखा उनका चेहरा पीला पडता जा रहा था... अन्य उपस्थित साहित्यकार प्रशसात्मक नजरो से मेरी ओर देख रहे थे, जैसे कह रहे हों आप ठीक कहती हैं.. उनकी नज़रो से मुझे शक्ति मिली तो मैने अपनी बात को आगे बढ़ाया, "आज चूँकि मत्री का बेटा है वह सरकार मे है.. आपके जुलूस या प्रदर्शन की उन्हे जरूरत भी नही है .वह स्वय सक्षम है.. उन्हे जो करना है, वह कर ही लेगे. मगर आप स्वार्थी लोगो को उनके बटे की मौत का दु:ख नहीं है. आप लोग तो उनकी नजर मे आकर भविष्य मे अपने स्वार्थ साधने के चक्कर मे है. भाई ! हमे क्षमा करना ।

कायर

बूथ लूटे जा रहे थे । भगदड़ मच गयी । मै हक्की-बक्की खड़ी कुछ सोच नही पा रही थी कि क्या करूँ... किधर जाऊँ ? इतना सोचते-न-सोचते गोली-बम चलने-फटने लगे. कुछ जिन्दा लोग पके आमो की तरह पट्-पट् धरती पर गिरने लगे । यह दृश्य देखकर मेरी चीख निकल गयी "बचाओ ।"

इसी के साथ मेरी दृष्टि खड़े कुछ पुलिस के सिपाहियो पर पड़ी.. मेरी आँखो मे आशा की चमक आ गयी और मै लगभग भागते हुए उस ओर बढ़ी । यह देखकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि पुलिस की पिकअप धूल के गुबार मे गायब हो गयी थी. मै भी उस गुबार मे अभिमन्यु की तरह घुस गयी ओर कुछ आगे दौडने पर मै उस पिकअप के सामने थी सोचा इनसे कहूँ कि वहाँ देखिए न, कितने लोग मारे जा रहे है और आप यहाँ. किन्तु अगले ही क्षण मैने सोचा जो पुलिस स्वय अपनी जान बचाने हेतु यहाँ आकर छुप-सी गयी है वह लोगो की क्या मदद करेगी ?

देखा भीड गोली-बम के धुएँ मे खो गयी है । मैने महसूस किया कि मेरी आँखो मे चिंगारियाँ निकलने लगी थी. ओर मैने जमीन से एक अद्धा उठा लिया, सोचा पिकअप पर चला दूँ. फिर यह सोचकर कि कायरो पर हमला करने से भी क्या फायदा और मेरे हाथ मे पकडा अद्धा स्वत: ही छूट कर नीचे गिर गया था । ●

हिजड़े (?)

"दौड़ो ! भागो !! धमाल शुरू हो गयी. गोधरा मे ट्रेन के कई डिब्बों मे आग लगा दी गई," एक सामूहिक शोर पूरे वातावरण मे फैल गया ।

इस शोर से किसी समारोह म नाच-गा रहे हिजडे परेशान हो गए हर तरफ, हर घर के दरवाजे बद हो गए । बेचारे हिजड़े अकेले रह गए..एकदम स्तब्ध एव भौचक !

"हम लोग क्या करे ? कहाँ जाएँ सारे मुहल्ले ने तो दरवाजे बन्द कर लिये है ।" हिजड़े आपस म चिन्तित थ ।

"लगता है शोर इधर ही आ रहा है. अब क्या करे ?" एक हिजड़ा बोला ।

"अरे ! परेशान क्या होते हो ये लोग तो एक दूसरे सम्प्रदाय को न मार-काट रहे हैं हमारा तो कोई सम्प्रदाय ही नही है ।"

"वो तो है मगर फिर भी " एक अन्य ने चिन्ता व्यक्त की, "जो होगा देखा जायेगा ।" चौथा कन्धा झटकते हुए बोला और सभी एक तरफ गली की ओर बढने लगे । अभी वे बढ़ ही रहे थ कि शोर करता एक समूह वहाँ आ पहुँचा और इन सभी को घेर लिया ।

"तुम लोग कौन हो ? यहाँ क्या कर रहे हो ?" समूह का अगुवा हाथ मे छुरा लहराते हुए बोला ।

"हाय ! हाय !! तुम्हे दिखाई भी नही देता.. पूछना है हम कौन है ?" हिजड़े ने अपने विशेष अंदाज में कहा ।

"अरे छोड़ो. साले हिजड़े है ।" समूह मे स अन्य बोला ।

"अरे देखो ! वह कोई दूसरे सम्प्रदाय का कैसे डर के मारे हाँफते हुए भागता जा रहा है.. पकड़ो साले को !" समूह का ही एक अन्य व्यक्ति दहाड़ा । इतने मे शोर करता समूह उसके पीछे भागा और उसे पकड लिया ।

"मार डालो साले को ।"

तब तक हिजड़े भी वहाँ पहुँच गए । "इसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है.. इसे क्यो मारते हो. अकेले को इतने मारे ! .. राम ! राम !! क्या अधेर है !"

"चुप बे हिजडे ।"

एक हिजडे से नही रहा गया, "हिजड़े हम है कि तुम ? अकेले निहत्थे और बेकसूर व्यक्ति को इतने जने मार रह हो । लानत है तुम सब पर । ऊपर वाले का कहर पड़े तुम सब पर ।"

सबके हाथ जहाँ थे, वही रुक गये । ●

भविष्य

मै अपने एक साहित्यिक मित्र की दूकान मे किसी कार्यवश बैठी थी । औपचारिकता का निर्वाह करते हुए उसने बगल वाली चाय का दुकान से दो कप चाय मॅगवा ली. जो लडका चाय लेकर आया, वह लगभग दस-बारह वर्ष का रहा होगा । चाय रखकर वह गिलास लने की गरज से एक तरफ बैठ गया और चाय पीते-पीते हमारा ध्यान उसके बडबडाने की ओर चला गया ।

''बहुत हुआ. अब तो हद हो गयी. अब बर्दाश्त नही होगा . कोई दिन साला मलिकवा साया रहेगा . छुरी घुसेड़ देगे...इदडी-लिदडी निकाल देगे. हो जाएगा अब बर्दाश्त नही होगा।'' और भी न जाने क्या-क्या बडबडा रहा था ।

मै सोचने लगी कल का भविष्य क्या आज से भी अधिक उग्र और भयावह होगा मै अभी यही सोच ही रही थी कि चाय वाला लड़का एक झटके से उठा और चाय के खाली गिलास लेकर चला गया । उसकी चाल मे एक निश्चय का आभास हो रहा था उसे इस प्रकार जाते देखकर मेरे मित्र सजल ने टोका, ''मीला ! क्या देख रही हो ?''

''क्या तुम्हे उसका बडबडाना और जाते हुए उसकी चाल... उसके कदमो से एक-निश्चय का आभास नही हुआ ?''

''हाँ ! हुआ तो .मगर ..।''

''अन्याय की ध्वजा बहुत दिनो तक नही लहरा सकती...।''

''तुमने आज का अखबार देखा है .. फिर एक नरसंहार. एक मंत्री का हाथ होने का सन्देह है... ।'' मैने कोई उत्तर नही दिया और मेरे जहन म चाय वाले लडके का बडबडाना और फिर उसकी चाल से आभास देता एक निश्चय मुझे सतोष दे गया आने वाला कल उग्र तो जरूर होगा, मगर उसके बाद शाति भी अवश्य ही होगी . यही जीवन-चक्र है. ।''

''मीला ! तुम कहाँ खो गयी ?'' मैने फिर कोई उत्तर नही दिया मात्र हल्के से मुस्कुरा दिया ।

वर्तमान व्यवस्था

मै अपनी दोस्त कीर्ति के साथ अपने कार्यालय की ओर गप-शप करते हुए चली जा रही थी । विषय वर्तमान म बिगडती हुई राजनीतिक स्थिति था । इतने मे देखा कि सडक पर जाम लग गया है – जाम भी ऐसा कि पैदल तक चलना कठिन हो रहा था । इतने मे मेने देखा कि सडक के किनारे बह रहे नाले से कचडा निकालकर स्थान-स्थान पर ढेर लगा दिया है और वर्षा होने के कारण वह कचडा पुनः नाले मे लौट रहा है । यह स्थिति देखकर मुझे बड़ी कोफ्त हुई । इससे पूर्व कि मैं कुछ कहती, कीर्ति ने कहा, "पता नही यह इतना जाम कैसे लग जाता हैं ?"

इसमे पता क्या नही लगता सामने बायी ओर देखो ! एक तो सड़क वर्तमान की भीडभाड में ऐसी ही सकरी है, इस पर दुकानों का अतिक्रमण, कोढ मे खाज नाले . मे निकालकर लगा कचरा का ढेर, जिसने आधी सड़क घर रखी है. जाम तो स्वाभाविक ही हे ।" "हाँ ! यह ता तुम ठीक ही कहती हो....इधर तो मेरा ध्यान ही नही गया था ।"

"अभी जो हम लोग वर्तमान राजनीति पर बात कर रहे थे. उसकी भी तो यही स्थिति है ..एक पार्टी से कभी-कभार इस नाले की तरह गदगी निकाली जाती है, तो दूसरी ओर वह गदगी वर्षा के पानी से मिलकर नाले की तरह अन्य किसी भ्रष्ट राजनीतिक दल मे जा मिलती है.. जनता तो इस सडक पर लगे जाम की तरह कष्ट उठाती रहती है....कब तक उठाती रहेगी यह प्रश्न विचारणीय हे ?"

बाते करते-करते कीर्ति ने अपनी घड़ी पर दृष्टि डाली, "अरे मिताली ! साढे दस बज गये...आज फिर लट होने के कारण बॉस की बाते सुननी पड़ेगी ।" और हमारे कदम सहज ही तेज हो गये । ●

रोशनी की ओर

महेश करीब दो वर्षो बाद गॉव लौटा तो उसने देखा कि गॉव का नक्शा ही बदला हुआ है । उसे बहुत हैरानी हुई । उसने गॉव के चौराहे पर स्थित बरगद के पेड के नीचे अपना सामान रखा और अनुमान लगाने का प्रयास करने लगा कि आज एक वर्ग विशेष की दूकानें बद है .. इतना ही नही उस वर्ग का कोई व्यक्ति भी दिखायी नही दिया । वह मन-ही-मन परेशान हो रहा था । इतने मे उसकी दृष्टि मास्टर साहब पर पडी, तो लपककर पैर छुए और पूछा, "मास्टर साहब ! जउ परिवर्तन कइसो .. जइ दुकानइ लगति हइ जइसे पलियाम सन्नाटा. ? सब ठीक त हइ ?"

"का बतामइ बेटा ! अब कुशल कइसी । जइसब जने अपनी जाति के नेता को भासन सुनन गये हइ ।"

महेश ने बात काटते हुए कहा, "तो मास्टर साहब आप काहे नाइ गये ?"

"गये हते...सोचो हतो नेता हइ त कुछ अच्छी बातइ कहीं...लेकिन बइ त वोट की राजनीति को खेलु बनाउल हते. गॉव का तोन्न की कोशिश कत्त हत्ते । जो बइ समाज की बात कत्ते त हम संधु देते बइ त जाति की बात कत्त हत. जिहि मा हमारो विश्वासइ नांइ ।"

महेश बाते सुनकर गद्‌गद्‌ हो उठा और सोचने लगा गॉव अभी पूरी तरह मरा नही हे जबतक मास्टर साहेब जैसे शिक्षित लोग गॉव मे है तब तक गॉव जिन्दा रहेगा.. ऐसे मौसमी नताओ से क्या होगा । मास्टर साहब बोले, "का सोचन लगे भइया ?"

"मास्टर साहब आपको वर्ग की राजनीति के विरुद्ध सघर्ष करना होगा । समाज के हित में काम करना होगा मै गॉव लौट आया हूँ और पूर्णतः आपके साथ हूँ । आप आगे बढे और नेतृत्व संभाले..." महेश की आँखे चमक उठी ओर वह अपना समान उठाकर घर की ओर चल पडा । ●

उपभोक्तावादी संस्कृति

मै तृप्ति के घर पहुँची तो दीपा अपने पति को काफी कुछ कह-सुन रही थी ! मुझे देखते ही वह सहज होने का प्रयास करने लगी और इससे पूर्व कि मै कुछ कह पाती मेरी और मुखातिब होते हुए बोली, "देखो ! इनके दफ्तर के सारे लोग चुनाव-ड्यूटी पर गए है, और ये हैं कि चुनाव- ड्यूटी से अपना नाम कटवा कर आ गए है ।"

"तो क्या हुआ ? अच्छा ही तो है... तेईस वर्ष बाद पंचायत चुनाव हो रहे है... काफी मार-काट होगी. ।" मै अभी बोल ही रही थी कि उसने मेरी बात काटते हुए कहा, "तुम भी लगी इनकी तरफ से बोलने. मर्द हमेशा कमाते धमाते ही अच्छा लगता है ।

"चुनाव मे न जाने से, कमाई में कहाँ अन्तर आता है ?" यह उसका पति था ।

"क्यो नही आता ! अरे, वेतन तो मिलता ही.. चुनाव- ड्यूटी के पैसे तो अलग से मिलते है... उन पैसों से घर के कर्ज, रुके काम हो सकते थे, मगर.. ।"

बीच मे बात काटते हुए पति बोला, "तुम्हे मेरी जान की कोई परवाह नही है.. तुम्हें तो पैसो की लगी रहती है ।"

"जान का क्या है. इसे तो एक दिन जाना ही है . समय से पहले नही जा सकती. .. समझे ! चुनाव-ड्यटी पर जाने वाला हर आदमी मर ही जाता है क्या ?"

पति निरुत्तर हो गया और मुझे तृप्ति का यो बोलना अच्छा नही लगा मैंने कहा, "तृप्ति ! मै चलती हूँ.. मुझे जरूरी काम याद आ गया है ।" इससे पूर्व कि वह कुछ कहती मै उठकर चल दी । ●

कुव्यवस्था

मेरे पिता अस्पताल मे भर्ती थे । जब वह कुछ ठीक हुए तो डॉक्टर ने उन्हे घर ले जाने को अनुमति दे दी । मैने डॉक्टर से कहा, "यदि एम्बुलेस का प्रबध हो जाता तो.. उन्होने कहा, "आप सुप्रिटेडेण्ट से मिलिए ।"

मै उनसे मिलने गयी, तो उन्होने कहा, "आप एम्बुलेस के चालक से पूछ लीजिए, यह जाएगा या नही ?" इस प्रश्न ने मुझे चौका दिया । मै सोचने लगी, यह क्या व्यवस्था है कि सुप्रिटेडेण्ट की कोई औकात नही जाने, या न जाने का निर्णय चालक करेगा । मगर मै तो पिता को लेकर परेशान थी । अतः, पुनः वार्ड मे पिता के पास लौटकर विचार करने लगी कि अब क्या करना चाहिए । मैने चालक से कहा, "भैया ! मेरे पिता को घर पहुँचा दोगे ?"

अभी मै सोच ही रही थी कि पड़ोस के बेड के पास खड़ी एक महिला ने पूछा "एम्बुलेंस मिल गयी ?"

"अरे । ऐसे थोड़े ही तैयार होगा.. उसे पच्चीस-पचास दे दीजिए फिर किसी भी अनुमति या औपचारिकता की आवश्यकता नही है.. एम्बुलेस इशारे पर चलेगी ।"

मै थके-थके से कदमो से पुनः उसके पास गयी और कहा, "भैया ! यह लो नीस रुपैया और मेरे पिताजी को आराम से घर पहुँचा दो ।"

"ठीक है ! आप अपने पिता एव अपना समान तैयार कीजिए । मैं फौरन एम्बुलेस लेकर आता हूँ ।"

मै सब तैयार करके जैसे ही वार्ड के दरवाजे पर आयी, चालक ने कहा, "चलिए । एम्बुलेस तैयार है ।"

अपने पिता एवं सामान को एम्बुलेस से चढाते हुए सरकार की स्थिति के विषय मे सोच रही थी उसकी स्थिति इस अस्पताल की व्यवस्था से तनिक भी भिन्न नही है । ●

जैसी करनी...

मुझे अल्ट्रासाउण्ड कराना था । मै नगर के ख्यातिलब्ध डॉक्टर के यहॉ चली गयी । इसी डॉक्टर के यहॉ जाने का एक कारण भी था कि उनसे हल्का-फुलका परिचय भी था।

जैसे ही अल्ट्रासाउण्ड हेतु मैने डॉक्टर का प्रेसक्रिप्शन बढ़ाया । वहाँ का कर्मचारी अपने यहॉ की औपचारिकताओं की पूर्ति करने लगा । उसके तत्पश्चात् उसने कहा, ''मैडम ! पाँच सौ रुपए जमा करा दीजिए ।''

पॉच सौ रुपए का नाम सुनते ही मै तो सकते मे आ गयी. इतना चार्ज ! एक तो मै अल्प वेतन भोगी कामकाजी महिला, उसपर से भरापूरा परिवार.. माह के अन्तिम दिन. मै चिन्तित हो उठी ..अपना पर्स देखा, उसमे मुश्किल से दो-सौ रुपए शेष थे... वेतन मिलने मे अभी लगभग दस दिन थे । मैने आग्रह किया कि मेरे साथ कुछ रियात कर दे... मुझे सुविध ा होगी ।''

''मैडम ! मै तो यहाँ का कर्मचारी हूँ . मै क्या कर सकता हूँ. . आप डॉक्टर साहब से मिल ले ..।''

मै डॉक्टर से मिलने चली गयी । उन्होने मुझे पहचान भी लिया... मैने अपना अनुरोध उनके सामने रख दिया । मेरी बात सुनते ही उनकी भाव-भँगिमा ही बदल गयी, कहने लगे, ''मोनी जी ! आप जैसे परिचय वाले तो प्राय: सभी होते है .. मैने सभी को इस प्रकार छूट देनी शुरू कर दी. तो सेण्टर बिकने मे कितनी देर लगेगी ।''

डॉक्टर की बात सुनकर बेहद तकलीफ हुई .. पॉच-सौ रुपए मेरी सीमा मे बाहर थे. . अत: मै लौट आयी ।

दो दिनो बाद समाचार-पत्रों की सुर्खियो मे था कि उस ख्यातिलब्ध डॉक्टर के यहॉ आयकर विभाग का छापा... लाखो रुपए नकद बरामद । यह समाचार पढ़कर मैने अपने मन्दिर मे लगे देवी-देवताओ के चित्रो की ओर देखा और अपने घरेलू कार्यो मे व्यस्त हो गयी । ●

ह्रास

अभिनन्दन-समारोह की भव्यता देखते ही बनती थी । क्यो न हो । राज्यपाल आ रहे थे । साहित्यकारो से लेकर राजनीतिज्ञो तक काफी भीड़ थी । प्रशासन से लेकर आमजन तक सभी अपने-अपने कार्यो एव स्वार्थ के वशीभूत खड़े थे : कुछ बेचारे महामहिम की एक झलक देखने हतु ही उत्सुक थे ।

समारोह दो चरणो मे था । पहले चरण मे साहित्यकारो को राज्यपाल महोदय के कर-कमलो द्वारा सम्मानित होना था । बहुत भव्यता से पहला चरण समाप्त हो गया । महामहिम अपने लाव-लै-लश्कर के साथ चले गए और सारी भीड़ भी साथ लेते गए ।

दूसरा चरण 'तुलसीदास की प्रासंगिकता' विषय पर विचार-गोष्ठी का था । इस चरण को अपराह्न तीन बजे शुरू होना था । इस समय चार बज रहे थे । सचालक महोदय बार-बार उद्घोषणा कर रहे थे, ''हाल से बाहर खड़े बन्धु । कृपा कर भीतर चले आएँ, ताकि दूसरा चरण आरभ किया जा सके ।''

मैने हॉल के बाहर जाकर देखा. वहाँ तो कोई भी नहीं था. हॉल मे जो दस-पन्द्रह प्रतिभागी बैठे थे । मै भी उन्हीं की पक्ति म जा बैठी . मुझे भी आलेख-पाठ करना था । ●

आया-गया

"ऐ जी । सुनते हो . ।"

"क्या बात है . सुबह-सुबह क्यों चिल्ला रही हो ?" मुरलीधर जी पत्नी पर झुंझलाते हुए बोले ।

"ऐसे क्यो बोलते हो... ?"

"कहो । क्या कह रही थी ?"

"घर का सारा राशन-पानी खत्म हुआ पड़ा है... और तुम हो कि कुछ सुनते ही नही ।

"तो क्या करूँ कहाँ से लाऊँ पैसा ?"

"ये तुम जानो ! अभी तक कहाँ से लाते थे ?"

"अभी तक तो मैं 'हिन्दी परिषद्' का महासचिव था, तो रोज कुछ-न-कुछ तिकडम लगाकर हिसाब-किताब बिठा लेता था । मगर अब तो ..।"

"अब क्या हो गया .. मुझे भ्रष्ट साबित करके, दूसरे पक्ष के लोग उस पर काबिज हो गए है... यो भी उसके कोष मे अब रखा ही क्या है ? सारा तो मैंने. ।"

"सारा आपने... तो क्या किया उसका ?"

"दिल्ली मे कोठी बनवा दी... बेटी की शादी कर दी. .।

"हाँ जी याद आया ! दिल्ली वाली कोठी के केस का क्या हुआ ?"

"अनऑथोराइज ढग से बनवायी गयी थी .. कोर्ट ने उसे डिमोलिश करने के आदेश दिये है ।"

"पहले नहीं सोचा था ?"

"सोचा था ! लोगो ने बताया था कि दिल्ली में ऐसी तमाम कोठियाँ बनी है जो अनऑथोराइज जगह पर बनी थी. . बाद मे सभी को स्वीकृति मिल गयी थी ।"

"तो अब क्या हुआ ?"

"हमारा दुर्भाग्य ! इस बार कोर्ट कुछ सुन ही नहीं रहा है...।" पति-पत्नी मे कहा-सुनी हो ही रही थी कि मै किसी कार्यवश उनके घर पहुँच गयी । मेरे मन मे जिज्ञासा हुयी कि किस बात पर तर्क-वितर्क हो रहा था । अत:, मैंने पूछ ही लिया ।

मुरलीधर की पत्नी ने सारी बात विस्तार से बता दी । सारी बात सुनकर मेरे मुँह से निकलने को हुआ, "जैसा पैसा आया था, वैसे ही चला भी गया ।" किन्तु, मैने अपने को जब्ब कर लिया और मै यह कहकर चली आयी, "फिर कभी आऊँगी ।" ●

विवशता

उसका आना मेरे लिए सदैव उत्सव-सा रहा है । उसके आने पर सब कुछ अच्छा-अच्छा लगने लगता है । वह जब-जब मेरे घर आता है, मन होता है कि पूरी दुनिया उसके चरणो मे अर्पित कर दूँ । पर चाहकर भी मै ऐसा नहीं कर पाती । चाय की औपचारिकता छोड़कर मै उसका स्वागत-सत्कार नहीं कर पाती । बस, घुट कर रह जाती हूँ । सोचती हूँ, मै जब भी उसके घर या किसी रेस्टोरेंट मे जाती हूँ, वह मेरे स्वागत मे कोई कोर-कसर नही छोड़ता और मैं अपराधबोध से ग्रसित फिजूलखर्ची की दुहाई देकर उसे मना करती हूँ, किन्तु वह मानता कहाँ है ! उसकी तुलना में मै अपने को बौना महसूस करने लगती हूँ ।

आज मेरे घर, सिवा नौकरानी के कोई नही था । मैंने सोचा आज यदि वह आ जाए तो दिल खोलकर उसका स्वागत करूँ । आज मुझे किसी का डर नही है । मेरा फोन सुनते ही वह घर से चला और लगभग आधे घण्टे मे मेरे सामने था । उसने प्रश्नवाचक दृष्टि से पूछा, "घर मे कौन-कौन हैं ?"

मैने नौकरानी, जो किचन मे काम कर रही थी, की ओर सकेत करते हुए कहा, "उसके सिवा और कोई नही है ।"

इतना सकेत पाते ही उसने मुझे अपनी बाहो मे जकड़ लिया और कपोलो पर एक ही साँस मे अनेक चुबन जड़ दिये । नौकरानी चाय बनाने मे व्यस्त थी । हम दोनो एक दूसरे का हाथ पकड़ सोफे मे धँस गए ।

मैने खिडकी से किचन की ओर झाँका । नौकरानी चाय के साथ नमकीन और बिस्कुट लाने की तैयारी में थी । एकाएक मुझमे एक भय-सा समा गया कि कहीं कोई पारिवारिक सदस्य आ गया तो ? यह सोचकर मैने सपन की ओर देखा और पूछा, "कुछ खाओगे भी ?"

मै जानती थी, कोई भी चीज खाने को पूछो, तो वह मना कर ही देता है । उसका मानना है यदि किसी को कुछ खिलाना है, तो उससे पूछना नही चाहिए । वही हुआ, उसने कहा नहीं ! कुछ नहीं खाऊँगा ।"

चाय हमारे हाथो मे थी । हम एक दूसरे को नजरो से पढ़ते हुए चाय सिप करने लगे । वह कातर नजरों से मेरी विवशता समझ रहा था । अपनी विवशता पर मेरी आँखे भर-भर आ रही थी । उन्हे रोकने में मै अपने को असमर्थ पा रही थी । उसकी नजरें मुझे सात्वना दे रही थी, "नही मर्यादा ! नही !! तुम परेशान न होओ । तुम्हारी स्थिति मै समझता हूँ ।"

लगभग आधा घटा व्यतीत हुआ होगा । मुझे ऐसा लगा कि हो सकता है कही कोई आ जाए... सपन के आने के सबध मे मुझे अनेक-अनेक प्रश्नो के सच्चे-झूठे उत्तर देने होगे । समझ मे नही आ रहा था कि मै उससे जाने को कैसे कहूँ ? मेरी विवशता को उसने मेरा आँखो से पढ़ लिया और पूछा, "मर्यादा ! अब मै चलूँ ?"

मैं चुप रही और सोफे से उठ खड़ी हुई । वह भी उठ गया । मेरी नौकरानी बर्तन धोने बाथरूम मे चली गयी थी । उसने मुझे पुनः बाहों में भर लिया और कपोलो को चूम लिया और दरवाजा खोलकर हाथ से बॉय-बॉय का सकेत करता हुआ बाहर निकल गया और मै अपनी विवशता पर सिसक पडी । ●

विश्वास

आज प्रातः जैसे ही अखबार आया, मै उसे उलटने-पलटने लगी । नगर समाचार के पृष्ठ को देखने के क्रम मे एकाएक दो समारोहो के समाचारों पर दृष्टि रुक गयी । यह क्या । सुनील कल इन गोष्ठियो मे गया था ? नही । यह नही हो सकता । वह मुझसे इतना बड़ा झूठ नहीं बोल सकता. मैन जब अपनी गोष्ठी मे उसे बुलाया, तो उसने असमर्थता जाहिर कर दी थी और कहा था, आज उसे अन्य कार्य है । वह आज किसी भी गोष्ठी मे नही जाएगा । मरी गोष्ठी मे वह नहीं आया, इसकी मुझे इतनी तकलीफ नहीं, मगर वह अन्य दो गोष्ठियो मे । इस पीड़ा ने मुझे परशान कर दिया । उसने ऐसा क्यों किया ? इतना बड़ा विश्वासघात.. नही ! सुनील ऐसा नहीं कर सकता । जरूर झूठा समाचार बनाकर किसी ने छपवा दिया होगा । मेरा सुनील एक विश्वास्नीय व्यक्ति है..मै अपने से अधिक उस पर विश्वास करती हूँ ।

सारी बाता के बावजूद मै सहज नही हो पा रही थी .. क्या मुझे सुनील के पास जाकर पूछना चाहिए ? वह कोई मेरा गुलाम तो नहीं... हम दोनो प्यार करते है... अतः, विश्वास से बढ़कर इस रिश्ते की कोई अन्य बुनियाद नही होती । यही क्या, किसी भी रिश्ते की बुनियाद मे विश्वास पहली और अंतिम शर्त है ।

सच कहूँ मेरा किसी काम मे मन नही लग रहा था । एकाएक मुझे लगा मेरा सारा शरीर शक्तिहीन हो गया है । मै चारपाई पर लेट गयी । मुझे इस प्रकार देख कर पिताजी ने टोका, ''मिनी ! क्या बात है बेटे ! एकाएक कुछ तबीयत वगैरा खराब है क्या ?''

''नही पापा ! बस जरा यो ही अभी ठीक हो जाएगा ।'' अभी वह इतना कह पायी थी कि सुनील आ गया । वह उसे लेकर ड्राइंगरूम मे आ गयी ताकि एकात मे बात कर सके । ''सुनील ।'' सुनील ने उसकी बात काटते हुए कहा,'' तुम्हे जो कहना है, वह तो मैं बाद मे सुनूँगा पहले, तुम मेरी बात सुन लो ..मै कल रात से लेकर अब तक वह कहने हेतु बेचैन रहा हूँ । फोन किया .. मगर पता चला तुम्हारा फोन खराब है । डार्लिंग कल मुझे एक रिश्तेदार के यहाँ जाना था, वहाँ जा ही रहा था । रास्ते में इतनी वर्षा होने लगी कि क्या कहूँ...बगल मे ही पुस्तक-विमोचन वाला समारोह था, जिसका आमत्रण मिला हुआ था ही । अतः, वर्षा रुकने की प्रतीक्षा मे वहाँ चला गया । चला गया तो कुछ बोलना भी पड़ा । बोलते-बोलते सुनील साँस लेने रुका । मैंने तुरंत कहा, ''फिर तुम अपने उस रिश्तेदार के यहाँ गए ?'' मेरी बात मे व्यंग्य था ।

''मिनी । मै तुम्हार गुस्सा-व्यग्य और प्यार को तुम्हारे चेहरे स पढ़ रहा हूँ. . तुम चूँकि मुझसे बहुत प्यार करती हो, इसीलिए तुम्हारी यह स्थिति है । रिश्तेदार के यहाँ जाने हेतु बीच मे कार्य छोडकर वहाँ स निकला और कुछ ही दूर आगे गया होऊँगा कि पुनः वर्षा शुरु हो गयी इतने में शुक्लाजी मिल गए वह गाडी मे विचार-गोष्ठी मे जा रहे थे । वहाँ भी मै

आमंत्रित था तुम्हे पता ही है, बस विवश होकर जाना ही पड़ा। फिर तो तुम जानती हो पूरी रात पानी बरसा..शुक्ला जी ने कृपा की, गाड़ी से पहुँचा दिया। यह मेहरबानी है अन्यथा तो । '' सुनील चुप हुआ तो मै उसके चेहरे को पढ़ने लगी वह शायद सच ही बोल रहा था मैने कहा, ''अरे। कुछ और कहना हो, तो वह भी कह ही डालो।''

''नहीं मिनी। क्या कहना है मै जानता हूँ, तुम भावुक लड़की हो, कुछ भी कर सकती हो। अतः, तुम्हे बताने चला आया कही तुम मेरे बारे मे अन्यथा न सोच बैठो.. कल तुम्हारी गोष्ठी मे नही आ सका, इसकी माफी माँगता हूँ।'' सुनील के अपने कान पकड़ने पर मुझे हँसी आ गयी.. वह भी हँस पड़ा। ●

धोखा

सुमित मेरे जिस उपन्यास का प्रूफ अधूरा छोड़कर चला गया था, आज मैने पूरा देख डाला। मेरी खुशी की सीमा न थी। चलो ! अब दो-तीन माह मे यह छपकर चला आएगा। सोचने लगी, किसे समर्पित कर दूं। मन ने जोर देकर कहा—यह कृति तो सुमित के नाम ही होनी चाहिए.....अन्य इसका अधिकारी नहीं हो सकता। इससे पूर्व कि मै समर्पण वाला पृष्ठ पूरा कर पाती, टेलिफोन घनघना उठा। बड़ी कोफ्त हुयी। मैने फोन उठा लिया "कौन ! अच्छा मृदुला, तुमने आज कैसे याद किया ?"

"यार ! बुरी खबर है....तुम्हारा वह दोस्त था न !"

"कौन ?"

"सुमित. ..!"

"क्यो क्या हुआ उसको ?"

"वह नही रहा। पिछले कई दिनो से मुम्बई में उसके हार्ट का इलाज चल रहा था। वह तो इलाज कराना भी नही चाहता था, मगर हमने उसे अस्पताल मे भर्ती करा दिया था। शायद उसके पास पैसे नही थे। वस्तुतः वह जीना भी नही चाहता था, सो... ।"

इतना सुनते ही टेलिफोन का चोगा मेरे हाथ से गिरते-गिरते बचा— "तुम्हे कैसे पता चला ?"

"जब वह यहाँ आया था, तो मेरे घर से मेरा पता लेकर मुझसे मिलने आया था। कह रहा था कि मैने अपनी बीमारी के विषय मे किसी को नही बताया .यहाँ तक कि मीनाक्षी को भी नही बताया।" इतना सुनते ही मै धड़ाम् से वही गिर पडी.. किसी तरह घर के लोगो ने सभाला.. .मै सोचने लगी कि मै भी कितनी अभागी हूँ.. वह बराबर सकेत देता रहा. ..वह अक्सर कहता.. .प्रतिदिन ऐसा लगता है कि शायद मैं तुमसे अन्तिम बार मिल रहा हूँ. मै कहती 'हाँ !' यह तो किसी को भी पता नही है....वह चुप हो जाता। आँखों से अविरल धारा जारी थी।

मुझे स्मरण हो आया। जाने से पूर्व वह काफी उदास था। उसका चेहरा स्याह पडा हुआ था... मैंने पूछा क्या बात है ? कहने लगा, "कुछ नही.. .बस अब घर-बाहर किसी से मिलने का दिल नही करता....अब साहित्य-वाहित्य में भी मन नहीं लगता। सोचता हूँ कही चला जाऊँ। मगर कहाँ जाऊँगा कह नही सकता....किसी को बताना भी नहीं चाहता....मुझे लगा था शायद भावुक करके वह मुझे निकट लाना चाहता है।

मैने जब पूछा कि मेरे उपन्यास का प्रूफ देख लिया है। कहने लगा, मन नहीं लगता, प्रयास करूँगा, जाने से पूर्व पढ़कर देता जाऊँ। यदि न भी पढ़ पाया तो जितना पढा रहेगा उतना ही देकर जाऊँगा.. लगभग दो माह पूर्व का पुनः स्मरण हो आया, उसने मुझे अपने

सीने से चिपका रखा था. कहने लगा शायद यह हमारा अन्तिम आलिंगन हो....मैने उसके मुँह पर हाथ रख दिया था. .कहने लगा, जानती हो मीनाक्षी ! मेरे हृदय मे कुछ प्रॉब्लम है कभी-कभी दर्द होता है

मैने कहा था, "तुम घर से लौट आओ । यहाँ मेरी जान-पहचान के डॉक्टर है, तुम्हारा खर्च नही होगा... मै दिखलवा दूँगी ।" उसने कहा था," ठीक है ।"

उसके बाद उसने मुझे याद नही दिलाया, अजीब स्वाभिमानी एवं जिद्दी था । मै भी विस्मृत कर गयी... मै अपनी समस्याओ एव अपनी बीमारी मे उलझी रही । वह बराबर मेरे स्वास्थ्य के विषय मे पूछता रहा, किन्तु मै कभी न पूछ सकी । मै सोच भी नही सकती थी कि "

"सुमित ! तुमने ऐसा क्यो किया तुमने मुझे बताया क्यो नही । मैने क्यो नही यह पता लगाने की चेष्टा की, कि तुम भोजन क्यो नही करते हो ? अब क्या करूँ ? मैंने महसूस किया, मेरा शरीर भी ठडा होता जा रहा है.. इससे पूर्व कहीं मुझे भी कुछ न हो जाए... मैने अपने उपन्यास पर सुमित के नाम का समर्पण लिख दिया । वह अक्सर कहता था, "मीनाक्षी ! जब तक मै जीवित हूँ, तुम मर नहीं सकती । हाँ ! मेरे मरने के बाद तुम भी दो-तीन माह से अधिक नही काट पायेगी । कारण जो भी बने.. सुमित के नाम समर्पण लिखकर मैने उपन्यास के प्रूफ अपने भाई के साथ सौप दिए और कहा, "राजन् ! इसे आज ही प्रकाशक को कोरियर से भेज दो ।" इतना कहकर मै सुमित की यादों मे खोई चुपचाप पलग पर लेट गयी । आसुँओं की धारा पुनः तेज हो चली थी । ●

पलको की छाव

मै सुबह उठी तो रह-रहकर रात देखा स्वप्न ऑखो के समक्ष सजीव-सा लगने लगा और मन मे एक अजीब-सी गुदगुदी होने लगी। मन हुआ, मैं किसी को बताऊँ। मगर कैसे ? यह सभव नही था। मै पूरी रात सचेतन के साथ थी. कभी उसकी बॉहो मे, कभी बागो मे, तो कभी बहारो. और कभी.. न.. न ! यह मैं क्या देखती रही थी। अन्तिम वाले स्वप्न की स्मृति आते ही मेरे कपोल गुलाबी हो गए और निगाहे झुक गयी। होठो पर मुस्कान तैर गयी। फिर एकाएक न जाने मुझे क्या हुआ, मै कुर्सी पर बैठ गयी और अपने दोनो हाथो से ऑखे बद कर ली।

"अरी मीता ! ये क्या आँखे बद किए बैठी है उठ ! हाथ-मुँह धोकर चाय पी ले।" मॉ सामने पड़े मेज पर चाय का कप रखकर चल गयी और मैं अपने आप में झेप गयी। सोचने लगी मॉ क्या सोच रही होगी ? मैंने अपना सिर झटका.. धत् यह तो सपना था सपनो का क्या ?

मै चाय पीने लगी। आज न जाने क्यों चाय का स्वाद इतना बढ़िया क्यो लग रहा था जबकि चाय तो रोज माँ ही बनाती है.. आज इसमे विशेष क्या हो गया कि इसका स्वाद बढ गया।

चाय पी ही रही थी कि कल शाम की स्मृति ताजा हो आयी... मै जब अन्तिम पीरिएड मे सचेतन से मिली, तो उसने कुछ खास रिसपॉन्स नहीं दिया था... ऐसे "हैलो-हाय" करके निकल गया, जैसे एकाध दिन का ही परिचय हो.. मेरा मन खिन्न हो उठा. उसने ऐसा क्यो किया ? फिर ख्याल आया, शायद उसे कोई अन्य उलझन रही हो... तो उसे कहना चाहिए था. हम दोनो मे यह तय था कि हम दोनो एक दूसरे से कभी कोई बात नही छिपाएँगे कुछ दिन ऐसा चला. फिर बाद मे मै ही कहाँ ईमानदार रह पायी... मुझे स्मरण हो आया. मैंने किसी विदेशी विद्वान की पुस्तक मे पढा था- कोई भी व्यक्ति किसी के प्रति शत्-प्रतिशत ईमानदार नही होता.. हो नहीं सकता.. यहाँ तक कि स्वयं अपने प्रति भी नही .. यह वाक्य ध्यान मे आते ही मेरे होठ पहले सिकुड़े फिर स्वतः फैल गए.. मुझे ऐसा लगा, जैसे वह मेरे समक्ष बैठा हो, और मै स्वय मे ही लजा गयी।

"अरे ! तुम अभी तक यही बैठी हो।" यह माँ थी। और मै झट् उठकर बिखरे पड़े बिछावनो को समेटने लगी। ●

सार्थकता

विश्वविद्यालय में छात्र–सघ–चुनाव अभियान अपने यौवन पर था । मै महासचिव पद की प्रत्याशी थी । इस अभियान मे विश्वविद्यालय एव उसके आस–पास का शायद ही कोई ऐसा भवन था, जो प्रचार–सबधी लिखावट से वचित रहा हो । इसी अभियान में मै भी अपने समर्थको के साथ अपने हिन्दी–विभाग की दीवार पर लिखवा रही थी । मैंने जैसे ही अपना नाम लिखना शुरू किया ही था कि एक स्वर मेरे कानो से टकराया, "मानसी ! यह क्या . तुम भी अन्य लोगो की तरह दीवारे गन्दी करने पर तुली हो..." यह मेरा सहपाठी सकेत था ।

"क्यो ! इसमें क्या हर्ज है ? सभी लोग तो लिख रहे है ।" मैंने दीवारो की ओर सकेत किया ।

"अरे मेरी बुलबुल ! तुम क्या सभी लोगों मे हो .. नही... नही... । तुम तो हिन्दी–विभाग की नाक हो... तुम्हारा नाम इन दीवारो पर लिखने के लिए नही है. .जो कल मिटा दिया जायगा... मेरी जिन्दगी ! तुम्हारा नाम तो मै अखबारो एव पुस्तको के सुनहरे पृष्ठों पर देखना चाहता हूँ, जहाँ से उसे कभी न मिटाया जा सके ।" मै स्तब्ध खड़ी–खड़ी उसका चेहरा देखती रही और उसने सफेद रंग मे ब्रुश डुबोया और पूरी दीवार को साफ कर दिया । फिर मेरा हाथ पकड़ कर एक तरफ ले गया और कहने लगा, "मानसी ! तुम तो स्वय सरस्वती हो ! तुम्हे कोई नही हरा सकता ! तुम अपनी बाते छात्रो के समक्ष रखो– वो देखो ! छात्रो का बड़ा समूह तुम्हारे साथ है ।"

मैंने सकेत की ओर देखा जो अब नारे लगाने में व्यस्त था, "वोट फॉर मानसी .वोट फॉर मानसी !" ●

मजबूरी

आज करवट-पर-करवट बदलने पर भी मीनल को नींद नही आ रही थी । बार-बार उसके जेहन मे आज दिन मे सत्यवीर से कही बाते उसे तग कर रही थी । वह सोचने लगी मैने कितनी सहजता से उस बेचारे से कह दिया था, "तुम चाहो तो मै तुम्हारे जीवन से हट सकती हूँ. .तुम चाहो तो मिलना कम कर सकती हूँ.. मगर तुम काम करो ..अपने काम को रुकने मत दो ।"

उसने कहा था, "काश ! यह मेरे वश मे होता ।" फिर एकाएक थोड़ा सख्त हो गया था, "तुम मेरे प्यार का मजाक उडा रही हो. .मै अधिकाधिक तुम्हारे साथ रहना चाहता हूँ और तुम यह क्या कह रही हो ।"

"देखो सत्यवीर ! मै हर हाल मे तुम्हारी भलाई चाहती हूँ ।"

"क्या खाक मेरी भलाई चाहती हो.. मुझसे मेरे प्राणो को दूर करने की बात कहकर .... ।" अपनी बात अधूरी छोड़कर वह रुआँसा-सा हो उठा था ।

वह सोचने लगी ..क्या वास्तव मे वह भी उससे अलग रह सकती है ?... शायद नही वह एक दिन नही मिलता है, तो लगता है शरीर प्राणहीन हो गया हो...उसे देखते ही लगता जैसे जीवन लौट आया हो...किन्तु मै उस बहुत समय दे भी तो नही सकती..घर, परिवार, समाज आदि अनेक बेड़ियॉ है.. जिन्हे तोड़ना इतना सहज तो नही है ..मगर मन..इस मन का क्या करूँ. ..सत्यवीर की भावनाओ का क्या करूँ. . मै उसे न मिलूँ, तो न मालूम वह क्या कर बैठे...बहुत भावुक लड़का है .कही आत्म. . नहीं ! नही !! मै ऐसा नही होने दूँगी . वह आत्महत्या नही होगी. वस्तुतः मेरे द्वारा उसकी हत्या होगी...और मै हत्यारिन बनकर कैसे जी पाऊँगी .. उसका वियोग. उस पर यह कलंक...दुनिया इसे हत्या माने या माने किन्तु मै तो जानूँगी .कि उसने मेरे ही कारण. .

"क्या बात है डार्लिंग ! अभी तक जग रही हो ।" यह उसका पति था । और उसने अपने ओठ उसके ओठो से सटाने चाहे, तो वह एक झटके से उठकर बैठ गयी. . "नही ।" उसे लगा जैसे सत्यवीर की दोनो ऑखों से समुद्र बहने लगा हो, और वह फफ्कने लगी ।

"मीनल ! क्या बात है ? कोई बुरा स्वप्न देख लिया है ?"

मीनल कुछ न बोली । पति से हटते हुए वह पुनः लेट गयी...आँखो से ऑसू नही थम रहे थे... वह सोचने लगी...क्या सत्यवीर भी ऐसे ही...आँसुओ का वेग और अधिक बढ़ गया. फिर न जाने कब वह नींद की आगोश मे चली गयी । ●

इन्सान

आज न जाने फिर क्यो बार-बार कर उसकी याद आ रही है। क्या आदमी था ! मेरे लिए कभी भी, कुछ भी कर गुजरने को सदैव तत्पर रहता था। मगर मैंने ओछी भावनाओ का व्यक्ति समझकर उसे कभी महत्त्व नही दिया।

उस दिन जब मेरे पेट का ऑपरेशन होना था तो मेरा मन करने पर भी वह नही माना और मुझे देखने चला आया था। डॉक्टर ने कहा था, "मैडम ! आपका ब्लड-ग्रुप माइनस है। हमारे नर्सिंग होम मे आपके ग्रुप का ब्लड नही है। आप फौरन इतजाम कर करा लीजिए तभी आपका ऑपरेशन सभव हो सकेगा।

"कहाँ से मिलेगा . सर ?" यह उसका पति था।

"अपना देखिए या अन्य किसी दोस्त महिम... और हाँ ! देखिए यहाँ ग्रुप मिलना जरा मुश्किल से ही है...।"

"अपना.." यह सुनते ही पति सिहर गया. अपना खून देना पड़ेगा . मै किससे कहूँ ।"

मै लेटे-लेटे सबके चेहरो को पढ रही थी सबकी कायरता मुझे साल रही थी, कि इतने मे सिद्धेश का प्रवेश हुआ। उसके आते ही ऐसा लगा कि पूरा वातावरण महक उठा है। उसने आते ही कहा "हलो"। उसके बाद उसकी नजर मेरे पति एव अन्य सबधियो पर पड़ी, तो वह कुछ सकुचा गया। खून देने के मामले मे अभी लोग एक-दूसरे का मुँह ही देख रहे थे कि डॉक्टर ने प्रवेश करते ही कहा, "अभी तक आपलोग यही हैं, ... कमाल है।"

"डॉक्टर ! क्या प्राब्लम है ?" सिद्धेश ने पूछा !

"ब्लड चाहिए।"

"तो इसमे सोचना क्या है ? मेरा ब्लड फौरन ले लीजिए,।"

"आपका ब्लड जाँच करने के बाद . फिर देखेंगे..।"

"ओ. के सर।" सिद्धेश की बात सुनकर मेरे पति सहित सारे सगे-सम्बन्धी एकटक सिद्धेश की ओर देखने लगे.. जैसे वह कोई बहुत बड़ा गुनाह करने जा रहा हो। मुझे सिद्धेश की दोस्ती पर गर्व हो आया।

यह अलग बात है कि उसका ब्लड मेच नही किया। ज्योंही डॉक्टर ने कहा, "मिस्टर सिद्धेश आपका ब्लड तो मैच नही कर रहा है.. ।"

डॉक्टर की बात पूरी होने से पूर्व उसके मुँह से एकाएक निकल गया था, ओह शिट् ।" उस समय उसका चेहरा देखने योग्य था। वह कितना मायूस हो गया था मै उसे उदास देखकर भीतर-ही-भीतर रो पडी थी। वह तुरत नर्सिंग होम से निकल गया और दो घटे मे डॉक्टर के प्रसक्रिप्शन के अनुसार उस ग्रुप का ब्लड ले आया था। उसके चेहरे पर जो खुशी थी वह मैंने इससे पूर्व उसके चेहरे पर कभी नही देखी थी.. मेरे ठीक होने पर

उसने कहा था, थेंक गाड उसका थेंक गाड कहना मुझे खुशियों से भर गया था और इस बार मै भर्रा-सी गई थी । किन्तु चुप रही थी ।

आज सिद्धेश नही है मगर उसकी जिन्दादिली आज भी मेरे समक्ष चलचित्र की भाँति सदैव चलती रहती है । तथाकथित अपनो का स्वार्थ मुझे जितना कष्ट देता है, उसकी स्वार्थ-हीनता की स्मृतियाँ आज भी मुझे जीवन-शक्ति देती है...।

मै अभी सोच ही रही थी कि बाहर दरवाजे पर हुई दस्तक ने मुझे वर्तमान में ला खड़ा किया और मै उदास हो गई । ●

पुनर्मिलन

मानसी ने अपनी दोस्तो के साथ जब नाश्ता कर लिया तो रेस्तरा के वेटर से पूछा, "मैडम ! कुछ और...?"

"नही !...बिल ले आओ ।"

"आपका बिल पेमेंट हो चुका है ।"

"क्या ! पेमेंट हो चुका है ? मगर मैंने तो...।" मानसी की बात को बीच मे ही काटते हुए वेटर बोला, " "हाँ ! हमारे मैनेजर साहब ने पेमेंट कर दिया है ।"

"क्यो ? उन्होने क्यो कर दिया ?" मानसी शायद कुछ और कहती किन्तु रश्मि बोल पड़ी, "वह कौन होते हैं हमारा पेमेंट करने वाले ?"

बबीता जो अभी तक चुपचाप सब सुन रही थी ने कहा, "अरे ! इस गरीब को कहने से क्या फायदा ? हमलोग मैनेजर से ही जो बात करें ।"

इतना कहने के साथ ही सभी उठ खडी हुयी और मैनेजर के चैम्बर मे जा पहुँची । मैनेजर को देखते ही मानसी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, और वह मुँह पर हाथ रखते हुए बोली "सुप्रभात तुम !"

"हाँ ! मै...तो इसमे आश्चर्य की क्या बात है ?"

"तुम तो होटल मैनेजमेंट का डिप्लोमा करने कलकत्ता गए हुए थे ?"

"अरे ! तुम लोग खड़ी क्यो हो ? (कुर्सियो की ओर सकेत करते हुए) बैठ जाओ. जब मेरा कोर्स खत्म हो गया तो जयपुर में जाकर छः माह तक एप्रेंटिशशिप की, अब यहाँ सर्विस शुरू की है ।"

"सुप्रभात ! यह मेरी दोस्त रश्मि और यह बबीता । और यह मेरे क्लास फैलो और फ्रेंड सुप्रभात...।"

"तो ये है जनाब, जिनके बारे मे तुम अक्सर...।"

मानसी लजा-सी गयी और कुछ क्षणों पश्चात् बोली, "तुमने बिल क्यों पेमेंट कर दिया ?"

"भूल गयी ! जब हम लोग कॉलेज में साथ पढते थे तो तुम हमेशा यही कहती थी कि रेस्तरां चलूँगी... पर एक शर्त, बिल का पेमेंट तुम करोगे ।"

"हाँ ! हाँ !! वो ठीक है...मगर अब तो मै सर्विस करती हूँ ।"

"तो क्या हुआ ?" जानती हो मैंने तुम्हे रेस्तरा मे आते देखकर ही वेटर से कह दिया था कि ये लोग जो भी खाएँ बिल मेरे खाते मे जाएगा....।"

"मगर !" मानसी ने कुछ कहना चाहा तो रश्मि बोल पड़ी," मानसी ! इसमें क्या बात है ? सुप्रभात की ओर से इसे ट्रीट समझो ।"

"सिर्फ ट्रीट..." सुप्रभात ने मानसी की आँखो-मे-आँखे डाल दी ।

"धत्त् ।"

"मानसी ! कभी घर पर आओ न, तो फिर..।"

"बाकी बातें बाद मे । मानसी लजाते हुयी उठी और अपने दोस्तो के साथ रेस्तरा से बाहर हो गयी । मानसी को जाते हुए देखता रहा और फिर अतीत मे डूबता चला गया । ●

नादानी

मैने आज निर्णय कर लिया था कि मैं समय देकर भी उससे बात नहीं करूँगी । वह अपने को समझता क्या है ? कल उसके पास कोई बैठा था । मैंने कहा, "सकेत ! मेरा काम कर दो.. या फिर मै जाकर अपना काम देखूँ ।"

वह चुप रहा । अन्य व्यक्ति उठकर चला गया । उसके जाते ही वह मुझपर उखड़ गया, "तुम्हे इतनी ही परेशानी थी तो उठकर चली जाती . फिर एकाध घंटे के बाद लौट आती ।" उसकी बात सुनकर मुझे बहुत क्रोध आया कि इसकी दृष्टि मे मेरा यही महत्त्व है, आज अन्य व्यक्ति अधिक महत्वपूर्ण हो गए । मै फिर भी चुप रही कि सकेत को दु:ख न हो ।

हम दोनो गपशप कर रहे थे । चलने मे पूर्व उसने मुझसे पूछा, "सम्मेलन की गोष्ठी मे जाओगी ?"

मैने उससे पूछा, "क्या मुझे जाना चाहिए ? कारण महासचिव ने न तो मेरे पास कोई कार्ड ही भेजा, और न ही व्यक्तिगत तोर पर मुझसे कुछ कहा...अन्य किसी व्यक्ति के द्वारा कहलवाकर औपचारिकता पूरी कर ली, जबकि अन्य प्राय: सभी को उसने स्वयं व्यक्तिगत तौर पर कहा है ।"

"इसमे मै क्या कह सकता हूँ.. जैसा उचित समझो, वैसा ही करो ।"

इतनी रुखाई से उसका कहना मुझे अपमानजनक लगा । खैर..मैने ढिठाई से काम लेते हुए पुन: पूछा, "तुम मेरे मित्र हो .मैंने तुमसे राय जाननी चाही..तुम 'हाँ' या 'ना' मे उत्तर दो ।"

"इसमे मै कुछ नही कह सकता..तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसा ही करो...।" वह अपनी बात पर अड-सा गया ।

मैने खुद को अपमानित महसूस किया । मै गोष्ठी मे तो नहीं गयी और निर्णय लिया कि अब सकेत से औपचारिक तौर पर ही मिला करूँगी । पूरी रात रह-रहकर मै उसके व्यवहार से दु:खी रही, बीच-बीच मे आँखे भर आती... मैने फोन नही किया ।

सुबह हुई तो मुझे ऐसा एहसास हुआ कि वह मेरे नही जाने से बेचैन एव परेशान है । मुझे दु:ख हुआ, में सपने मे भी उसे दु:खी नहीं देख सकती .मे तो उसके सुख म अपना सुख तलाश करती हूँ । अत:, मैंने निर्णय लिया कि वह जो गलतियाँ करता है...यदि मै भी वही करूँ तो फिर हम दोनो मे अन्तर ही क्या रह जायेगा । यह सोचकर मैंने उसे फोन किया "मै नियत समय पर पहुँच रही हूँ ।" उसके स्वर में प्रसन्नता थी । ●

आक्रोश

आज पन्द्रहवाँ दिन है, न सरगम आया, न फोन किया। समझ में नहीं आता कि उसे हुआ क्या है ? कहीं उसकी तबीयत तो.. नहीं ! नहीं !! ईश्वर उसे दीर्घायु करे.. फिर क्या कारण हो सकता है ? मैं जितना सोचती कि न सोचूँ, मन था कि उसकी ओर से हटता ही नहीं था। जब मेरी बेचैनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी, तो मैंने उसे अपने अनुज से सूचना भिजवायी कि दीदी अस्वस्थ है।

लगभग पन्द्रह–बीस मिनटों में वह मेरे सामने था। उसका चेहरा ही बता रहा था कि वह बहुत घबराया–सा एवं परेशान था। मुझे देखकर वह उसी घबराहट में बोला, ''मणिका ! तुम्हें क्या हुआ ?''

''तुम्हें क्या ? मुझे कुछ भी होता रहे, तुम्हारी बला से।'' मैंने कृत्रिम गुस्सा करते हुए कहा।

''ये तुम क्या कर रही हो ? मेरी तो प्राण–वायु ही तुम हो।''

''तो फिर पन्द्रह दिनों से तुम कहाँ थे ?''

''घर पर ही था।''

''क्या कर रहे थे ?''

''कुछ भी नहीं . तुमसे दूर रहकर मैं कर ही क्या सकता हूँ ?''

''तुम आ जाते... मैंने तुम्हें रोका तो नहीं था।''

''कैसे आता.. उस दिन मैं तुम्हारे घर गया. तुम्हारी माता जी ने बताया कि वह अनुरंजन के साथ किसी साहित्यिक समारोह में गयी है.. उन्होंने कार भिजवायी थी।''

''यह बात तुम्हें बुरी क्यों लगी ?''

''वाह ! क्या बात है मुझे बुरी क्यों न लगती.. तुमसे मिलने के लोभ में ही तो मैं गोष्ठी में नहीं गया... और तुम कार में बैठने के लोभ में तुरन्त चली गयी... तुम्हें जरा भी ख्याल नहीं आया कि मैं आकर लौट जाऊँगा..।''

''तुम तो मेरे बिना लगातार दो–दिन भी नहीं रह सकते थे, फिर इतने दिन तक बिना फोन, बिना आए कैसे रह लिए ?''

''आक्रोशवश !.. तुमने ऐसा क्यों किया ?''

''गलती हो गयी.. लेकिन अगर एक दिन मैं किसी के साथ चली गयी, तो तुम इतना गुस्सा हो गए... देखो ! मैं तुम्हारे न आने से कितना परेशान थी।''

''अब तो ऐसा नहीं करोगी न ?'' उसके भोलेपन पर अकस्मात् मेरी हँसी छूट गयी। ●

समाज से हटकर

अन्य दिनों की भाँति आज भी सवेदन मेरे घर आया। मै अकेली थी। हाथ मिलाने के बाद बोला, ' कल घर जा रहा हूँ।"

"मेरी शुभकामनाएँ तुम्हारे साथ है।"

"धन्यवाद !... एक अनुरोध है... मान सको तो कृपा होगी।"

"आज तुम औपचारिक क्यो होने लगे. ?"

"जानती हो... मैं हृदय का रोगी हूँ. यह अन्तिम मिलन ही न हो ... एक इच्छा, काफी दिनों से दिल मे दबाये बैठा हूँ...।"

"कहो ! संकोच कैसा ?"

"क्या तुम मुझे आलिंगनबद्ध करके चुम्बन ले-दे सकोगी ?"

यह सुनते ही पूरे शरीर मे झुरझुरी-सी फैल गयी। मन हुआ कि उसे अपनी बाँहों मे लेकर उसकी इच्छा-पूर्ति कर दूँ. मगर यह समाज...।

मै चुप रही, कुछ न बोल सकी सवेदन को कुर्सी पर बैठने हेतु संकेत किया और मै दूसरे कमरे मे चली गयी, जहाँ मेरे पति का चित्र माला सहित टँगा था... मैने उनकी ओर देखा, सोचने लगी, जब वह दूर पर जा रहे थे, उन्होने कहा था, "नीचे तक आकर जरा 'सी ऑफ' तो कर दो।"

मैंने कहा था, "समाज क्या कहेगा, हर समय कमरे में साथ रहे. फिर भी कोई कसर बाकी थी ..।"

वो गए, फिर लौटकर नही आए... वही हृदयाघात ने उनकी जान ले ली थी। मैं आज भी सोचती हूँ, क्यों न मैने उनकी इच्छा-पूर्ति कर दी .. अन्तिम इच्छा लिए ही वह चले गए। मेरी आँखे गीली हो गयीं, मै धीरे-धीरे पुनः उस कमरे में लौट आयी, जहाँ सवेदन बैठा था और आते ही मैने उसे अपने आलिंगन मे ले लिया। इच्छा-पूर्ति पर सवेदन खिल उठा था।

वह तुरन्त लौट गया। कही दूर से एक पुराने गाने का मधुर स्वर मेरे कानो में रस घोलने लगा, 'अपने लिए, जिए तो क्या जिए'। ●

रक्षक

रात न जाने क्यो, रह-रहकर एक अज्ञात भय का-सा, एहसास हो रहा था । मेरी समझ मे नही आ रहा था कि मै क्या करूँ ? मन बहुत घबरा रहा था । आँखो मे आज दूर-दूर तक नीद का कही नामो-निशान तक नही था । मै बार-बार नीद को कोसती.. मेरी दृष्टि सोये हुए नवजात पुत्र की ओर चली गयी.. वह शात हो रहा था, जबकि नित्य-प्रति इस समय वह कभी चुप नही रहता था । सोचा उसे उठा दूँ... मैने हल्का-सा प्रयास भी किया, किन्तु फिर सोचा मै तो परेशान हूँ ही.... उसे क्यो करूँ ?

बगल मे लगे रैक से अनमने ढग से एक पुस्तक उठा ली, "अरे यह तुम हो ।" मुँह से अकस्मात् निकल गया. यह सवाद की पुस्तक थी । संवाद जो आरम्भ से कॉलेज तक मेरा सहपाठी था । हम शादी करना चाहते थे, पर ऐसा नहीं हो सका था । उसने शादी नही की और मेरी शादी हुई मगर बेटा का मुँह देखे बिना वह चले गए... सवाद आज भी मेरी प्रतीक्षा मे है .. मेरा बहुत ध्यान रखता है आज वह बार-बार वह याद आने लगा । मै पुस्तक नही खोल सकी, कवर के पृष्ठ भाग पर छपा उसका छायाचित्र देखने लगी । बीते समय की अनेक-अनेक स्मृतियाँ आती-जाती रही । आज तीन दिन हो गए । दिल्ली से नही लौटा, उसे आज आ जाना चाहिए था । वह वायदे का पक्का आदमी है । सहसा मेरी नजर घड़ी पर चली गयी । दस बज रहे थे । उसकी गाडी तो सात बजे ही आती है । फिर क्या हुआ मेरे संवाद को ? गाड़ियो की स्थिति भी तो ऐसी ही है, कभी समय पर नही आती है.. अच्छा चलो फोन करके देखती हूँ. . मगर वह तो आते ही पहले मुझे फोन करता है. क्या करूँ ?

मैंने फोन किया, घटी जाती रही और अन्ततः घंटी की आवाज बद हो गयी... शायद फोन खराब है... नही ! नही....!! अगर फोन खराब हो भी, तो भी वह पी.सी.ओ से फोन करेगा । मन स्थिर नही हो पा रहा था । मेरी नजर सामने टगे 'ओइम्' के पोस्टर पर चली गयी, जिसमे गायत्री मंत्र छपा हुआ था. मुझे याद आया कि कभी किसी बात के प्रसंग मे सवाद ने कहा था, "मती ! जब कभी मन अस्थिर होने लगे या आत्म-विश्वास डगमगाने लगे, तो गायत्री मत्र का जाप रामबाण-सा काम करता है.. मै इसे अनेकबार आजमा चुकी थी यह बात ध्यान मे आते ही मैने गायत्री मत्र का जाप आरम्भ कर दिया.. बस अभी पॉच-सात बार ही पढ़ा होगा कि टेलिफोन घनघना उठा । फोन उठाते ही लगा दिपावली का पर्व आ गया... यह सवाद था, "मती ! सो गयी क्या ? अरे यार । माफकर देना, देखो न ! आज गाड़ी बहुत लेट पहुँची है... अभी-अभी कमरे मे आया . अटैची रखी ही है. सोचा अपनी मती को फोन कर लूँ ।" मै अभिभूत होकर उसकी बातें सुनती रही । आनंदातिरेक मे आँसू आ गए थे. . मै कुछ बोल न सकी । वह चिन्तित स्वर मे पुनः बोला, "मती ! गाड़ी लेट हो गयी तो बताओ इसमे मेरा क्या दोष है ?.. तुम नाराज हो. मुझे पता था... तुम यही करोगी. . इसीलिए आते ही मैंने सबसे पहला काम..तुम्हें फोन किया.. अच्छा ! यदि तुम मेरी ही गलती समझती हो... तो मुझे माफ कर दो न प्लीज ।"

मेरा गला रुँध गया था । मैंने कहा, "नहीं साथी । तुमसे नाराज होकर मै कहाँ जाऊँगी .. तुम्हारे सिवा मेरा है ही कौन ? " इसके बाद न जाने कितनी देर तक बातें होती रही . डर न जाने कहाँ चला गया था... फोन रखते ही शैनः शैनः मै नीद की आगोश में समाती चली गयी । मेरा पुत्र पूर्ववत् गहरी नीद मे सोया हुआ था । ●

आत्मीय सबंध

मैने सयम को वायदा किया था कि गाड़ी देर-सवेर पहुँचने पर भी मै ग्यारह बजे तक तो कार्यालय पहुँच ही जाऊँगी । मगर ऑधी-बरसात में पेड आदि गिरने से लाइने ब्लॉक हो गयी और गाडी अप्रत्याशित ढग मे विलम्ब से पहुँची । रास्ते मे गाड़ी जैसे-जैसे विलबित हो रही थी- घडी देख-देखकर मै परेशान होती जा रही थी । समझ में नही आ रहा था कि क्या करूँ ? रह-रहकर सयम का ध्यान आ रहा था । वह मुझे लेकर कितना परेशान हो रहा होगा । मेरे बारे मे न जाने क्या कुछ सोच रहा होगा । मुझे अपनी बेबसी पर रोना आ रहा था ।

मैं जैसे ही अपने निवास पहुँची, घडी देखकर मैने सोचा अब तो कार्यालय बद होने का समय हो गया है । इस समय कार्यालय जाकर चेहरा दिखाना हास्यास्पद होगा और सयम वहाँ होगा ही और कार्यालय के बाद हम दोनों का मिलन चर्चा का विषय बन सकता है । यह सोचकर मै फ्रेश होने लगी ।

फ्रेश होकर सोचा सयम को फोन करके बता दूँ- मै पहुँच गयी हूँ । किन्तु अगले ही क्षण मेरा अहम् जाग उठा... मैं ही फोन क्या करूँ ? उसका फर्ज नही बनता, यदि मै दिए गए समय पर कार्यालय नही पहुँच सकी तो कम-से-कम उसे भी तो मेरी चिन्ता होनी चाहिए । उसे फोन करके पूछना चाहिए, मै आयी या नहीं ? आयी, तो दिए गए समय पर कार्यालय क्यो नही आयी ? अतः, फोन की ओर बढ़ती हुई अगुलियाँ वापिस लौट आयी । मन हुआ कि वह परेशान हो रहा होगा, उसे फोन कर ही देती हूँ. मेरी अगुलियाँ पुनः फोन की ओर बढ गयी । अह्म ने बढ़ी हुई अगुलियों को पुनः लौटा दिया और मै नाश्ता करने बैठ गयी ।

टेलिफोन की घटी घनघनायी । मेरे अनुज ने फोन उठाया । उधर से फोन रख दिया गया था । मै समझ गयी, फोन सयम का ही था । वह अक्सर ऐसा ही करता है- यदि मै फोन न उठाऊँ, तो वह रख देता है । मेरा अहम् पिघल गया और मै नाश्ता छोडकर तुरन्त फोन की ओर बढ़ गयी । यह क्या । फोन डेड हो गया था । बहुत झुझलाहट हुई । मै अपने अह्म को जी भर कोसने लगी । और डेड फोन के साथ ही माथा मारती रही । किन्तु व्यर्थ । कोई परिणाम नही निकला ।

मै एक झटके से उठी और पी.सी.ओ. चली गयी । सयम को फोन मिलाया । मेरे फोन से सयम चहक उठा । मुझे अच्छा लगा । पूछने लगा, "कब आयी ?"

"साढ़े बारह बजे ।"

"तीन घटे बाद मेरी याद आयी ?"

उसका शिकवा भी मुझे अच्छा लगा । मै चुप रही । वह पुनः बोला, "अच्छी हो न ? कुछ क्षण चुप रहने के बाद पुनः बोला, "मैने इन्क्वारी से पूछ लिया था कि तुम्हारी गाड़ी लेट है । तुम्हारी विवशता को मै महसूस करता रहा ।" काफी देर तक हम बाते करते रहे . फिर ध्यान आया फोन पर बात करने की सीमा होती है । मैंने कहा, "कल छुट्टी है.. कल तुम घर पर ही आ जाओ, तुमसे बाते करके अच्छा लगेगा ।" ●

कॉच का रिश्ता

क्या किसी के प्यार का अपमान अच्छी बात है ? क्या किसी के विश्वास पर आघात करना नैतिकता है ? क्या किसी को दिलोजान से प्यार करना पाप है ? यदि ऐसा नही है तो मेरे साथ अक्सर ऐसा ही क्यो करता है वह ? ये प्रश्न आज रह-रह कर मुझे मथ रहे थे झुझला रहे थ ।

आज मेरा कसूर क्या था... मैंने सिर्फ वह पुस्तक ही तो जरा अवलोकनार्थ मॉगी थी मै क्या उसे खा जाती, या ले जाती... कैसे एक झटके से कहा "नहीं, अभी नही ।" वह भी अकेले मे कहा होता, तो कोई बात नही थी. मेरी दोस्त भी तो मेरे साथ बैठी थी.. वैसी दोस्त जो मुझे अक्सर कहती, "मन्ना ! तुम किस स्वार्थी के चक्कर मे पडी हो।... यह आज तक किसी का हुआ है ?"

मगर मैने सदैव उसको डॉटा, "वह तुम्हे न मिल सका. यही तुम्हारो ईर्ष्या-द्वेष का कारण है ।" मेरे डॉटने पर वह चुप हो जाती और कहती, "जिस दिन तुम ठोकर खाकर स्वयं गिरोगी तुम्हे स्वतः ही एहसास हो जाएगा ?"

मुझे स्मरण हो आया कि एक दिन मैने उससे वे दो पुस्तकें मॉगी थी, जिन्हे खरीदते समय उसने कहा था, "अरी मन्नो ! जो पुस्तके मैने खरीदी है, तुम उन्हे मत खरीदना, जो कुछ मेरे पास है, क्या वह तुम्हारा नही है ?" इस बात से मै फूली नहीं समायी थी. मुझे अपने प्यार पर नाज हो आया था । फिर एक दिन मैने कहा, "यार । जरा वे पुस्तके देना, पढ़कर लोटा दूँगी ।" कितनी दृढ़ता से उसने स्पष्ट मना कर दिया था, "अभी यह सभव नही है ।" उस दिन मुझे ऐसा लगा, जैसे किसी ने मुझे एक झटके से काट दिया हो, और मै लहूलुहान होकर धरती पर आ गिरी हूँ । उस दिन मुझे लगा था, मै शायद किसी पत्थर को प्यार करती हूँ । मगर किसी ने ठीक ही कहा है- प्यार अधा होता है । प्लस-माईनेस कुछ नही सोचता ।

आज मेरे हृदय को कितनी चाट लगी है, ये मेरे एवं ईश्वर के अतिरिक्त कोई नही जान सकता । इससे पूर्व मैं इतनी आहत कभी नही हुयी । आज उसकी बाते पुनः पुनः सजीव हो जा रही है- उसके कार्यालय मे उसकी किसी चहेती की पुस्तक रखी थी, जिसे मै जानती थी कि न उसने पढ़ा है... न पढेगा । यह उसके स्वभाव मे ही नही है । मैने कहा था "समीर मै उसे ले जाऊँ न ?" उसने पुनः दृढता से कहा, "नही ! अभी मैने पढ़ना है ।" मैंने लगातार कई बार माँगी . मगर उसने नही दी ।" आज पुनः उसका यह रुख मुझे आहत कर गया। आज मै उसके पास से यह सकल्प लेकर निकली कि जीवन मे अब उससे कभी कुछ नही मॉगूगी । मगर उससे प्यार... इस पर तो मेरा वश नही है । मे जानती हूँ, वह मुझे प्यार नही करता... कभी कर भी नही पाएगा. उसने तो अपना प्यार पहले से ही किसी को दे रखा है जिसके विपक्ष मे एक शब्द सुनते ही उसे ऐसा लगता है, जैसे किसी न उसके काना मे पिघला हुआ सीसा डाल दिया हो ।

मेरे मन ने मुझसे पूछा- "क्या एकतरफा प्रेम ही चलेगा ?"

"शायद. क्योकि उसे भुलापाना मेरे वश म नही है । ●

सन्तोष

सजल के आते ही मैंने शिकायत भरे लहजे मे पूछा, ''कल गोष्ठी मे मै नित्यनारायण, रघुवश आदि-आदि को पानी दे रही थी और तुम्हे ! जबकि तुम मेरी बगल मे ही बैठे थे, नही दिया। तुम्हे कतई बुरा नही लगा ?''

''इससे तुम्हें क्या फर्क पड़ता है ?''

''पड़ता है ! मै जानना चाहती थी कि यदि तुम्हें बुरा लगा तो इसका अर्थ कि तुम मुझे बहुत.. और यदि नही ..'' 'यदि नही' कहते-कहते मै कुछ उदास-सी हो गयी ।

''मजूषा ! तुम उदास क्यों हो गयी ?''

''तुम्हे कल मेरी हरकत का बुरा क्यो नहीं लगा ? यदि लगा तो आज आते ही तुमने मुझसे शिकवा क्यो नही किया ?'' मुझे उदास देखकर सजल भी उदास हो गया। उसका यो उदास होना मुझे अच्छा लगा। कुछ क्षण चुप रहने पर वह बोला, ''मुझे बुरा तो बहुत लगा, मगर यह सोच कर कि कही तुम यह न सोचने लगो कि मै तुम्हारे मामले मे नुकताचीं क्यों करता हूँ.. तुम बुरा न मान जाओ इसलिए मैने अपने को अभिव्यक्त नही किया।''

''सच्च !''

''सच तो यह है मजूषा कि कल मै तुम्हारी उस उपेक्षा के कारण पूरी रात सो नही सका।'' यह सुनकर मुझे अपने किये पर दुःख तो बहुत हुआ, मगर अब मै प्रसन्न थी। ●

बेकद्री

आज तो हद हो गयी। मै कितने प्यार से उसे मिलने गयी... मैने न कभी अपने लाभ की चिन्ता की, न हानि की... उसने जैसा कहा, मैंने वैसा किया...उसके किसी भी काम को कभी 'न' नहीं की.. उससे कभी कोई बात छिपायी नही.. मैने जब पूछा, "तुम्हार जिस सबधी पर पुलिस-केस हो गया है. वह तुम्हारा सगा-संबधी है या दूर दराज का ? बताओ तो सही..." "मुझे कुछ भी पता नहीं है...।" उसका इस प्रकार झुझलाना मुझे अपमानजनक लगा... जब हम दोनो ने यह तय किया था कि किसी से कोई बात नही छिपाएगे तो फिर. ? मै अपमान का घूॅट पीकर रह गयी मेरी पीड़ा उसपर उजागर न हो. मैने कहा "सुरेन्द्र ! यार, चाय मंगवाओ।"

कहने लगा, "अरे ! अभी तो पी थी.. आजकल तुम चाय बहुत पीने लगी हो। उसने चाय लाने का आदेश दिया, मगर मै सन्न रह गयी, आज इसे क्या हो गया है.. मुझे चुप देखकर उसने पूछा, "क्या बात है ? आज परेशान लग रही हो...।"

मैने कहा, "कोई खास बात नही... बस यो ही।"

"देखो ! तुम मेरे पास दिन-दिन भर बैठकर अपना समय नष्ट करती हो... तुम क्यो नही जाकर अपने घर या साहित्य का ही कुछ काम करती हो..किए गए काम ही तुम्हारे काम आएंगे.. यो इस तरह...।"

अब मुझसे सहन नहीं हुआ... किन्तु मै उसके मनोभावों का अध्ययन करने लगी, जो व्यक्ति स्वय दिन-दिन भर मुझे अपने पास से हिलने न देता हो.. आज उसे मेरा बैठना इतना बुरा लगने लगा... मुझे तुरन्त ही ध्यान आया, मैंने जब उसके किसी सबंधी के पुलिस-केस के विषय में पूछा तो वह झुंझला उठा था... बात साफ है.. उसे लगने लगा है... मेरे बैठने से संभव है...धीरे-धीरे वो बाते सामने आने लगेंगी, जिन्हे वह रहस्य ही रखना चाहता है...

चाय आ गयी तो, उसने कहा, "लो चाय पिओ।" मैने बेशरमी से चाय का कप पकड लिया और धीरे-धीरे सिप करने लगी। मुझे ऐसा लग रहा था जैसे उसके घूँट के साथ कसैलापन मेरे भीतर प्रवेश करता जा रहा है... मुझे उबकाई आने लगी। मैने शेष चाय छोड दी और कप टेबुल पर रखते हुए इस सकल्प के साथ उठी कि अब अपना समय नष्ट नही करूँगी... चाहे मुझे अपनी भावनाओ का गला ही क्यो न घोटना पडे। ●

जीत-हार से परे

समर्थ बहस-मुबहसे से सदैव दूर एवं शांत स्वभाव का व्यक्ति था। किन्तु न जाने क्यों आज चर्चा के दौरान वह एक शब्द के हिज्जे को लेकर अड़ गया। मैं लाख समझाने की चेष्टा करती, किन्तु वह मेरी बात मानने को कतई तैयार नहीं था। मैं भी अड़ गयी, मैं जानती थी कि मैं जो कह रही हूँ वही हिज्जे सही है। शब्द-कोश देखने पर उसका चेहरा बुझ-सा गया। उसकी स्थिति देखकर मुझे बहुत दुःख हुआ कि मैंने उससे बहस करके उसका दिल क्यों दुखाया। मैंने इतना बुझा चेहरा कभी नहीं देखा था। मुझे अपने अड़ने पर बहुत ही क्रोध आया। वह शांत चुपचाप घर की खिड़की के बाहर प्रकृति में शायद कुछ ढूँढ़-सा रहा था- वह एकटक उसी ओर देखे जा रहा था।

कुछ मिनट तक कमरे में मौन पसरा रहा। मुझसे यह सन्नाटा सहन नहीं हो रहा था। उसके होठों पर तैरने वाली चिरपरिचित मुस्कान गायब थी। मेरी आँखें पनियल हो गईं। वह तुरन्त बोल उठा, "नहीं! ऐसा न करो।"

उसके स्वर ने मुझे राहत प्रदान की। कुछ क्षणोपरान्त वह मेरी ओर मुखातिब हुआ, "जानती हो! आज पहली बार हारा हूँ... हारने की आदत नहीं रही न... इसलिए! लेकिन तुमसे हारकर भी मैं खुश हूँ .. तुमसे हारना अच्छा लग रहा है...तुमसे अब कभी जीतना नहीं चाहूँगा... हार कर जितना आनन्द आया जीतकर भी उतना आनन्द नहीं आता।"

उसे सहज होते देखकर मैं भी सहज हो गयी और मेरे मुँह से स्वतः निकल गया, साथी! तुम हार कर भी जीत गए और मैं जीत कर भी हार गयी।"

" वह कैसे ?"

"हम दोनों का आपस में कुछ अलग भी है क्या ?" ●

एहसास

आज जब मै पूजा कर रही थी तो न जाने क्यो बार-बार मरी आँखे भर आती और ईश्वर की मूर्ति के स्थान पर समर्पण साक्षात् उपस्थित हो जाता । मैं बार-बार वहाँ से अपना ध्यान हटाने का प्रयास करती, किन्तु वह बार-बार उपस्थित हो जाता और हर बार उसके चहरे पर वही चिरपरिचित मुस्कान रहती । मै समझ नही पा रही थी कि ऐसा क्यो हो रहा है ? मैं परेशान हो उठी, "हे ईश्वर ! ऐसा क्यों हो रहा है ? मेरी भक्ति मे क्या कमी रह गयी, जो मेरा मन बार-बार विचलित होता जा रहा है ।"

मुझे ऐसा लगा, जैसे मूर्ति के होठ हिले और कह रही है, "तुम्हारा प्रेम तुम्हारे हृदय मे है किन्तु तुम्हारा झूठा अहकार तुम्हे बार-बार विचलित कर देता है... मै क्या हूँ ? मै भी तो प्यार ही हूँ ।" इसके पश्चात् मैने देखा मूर्ति के होठो पर समर्पण जैसी ही मुस्कुराहट है फिर एकाएक उस मूर्ति के स्थान पर समर्पण ही था । मैंने उसे छूना चाहा, मगर वह तो मूर्ति थी ।

मैने मूर्ति को प्रणाम किया और कुर्सी पर बैठ गयी । मेरा हाथ चेहरे पर गया तो देखा आँसू बह रहे थे । अरे ! मुझे यह क्या हो रहा है .. आँसू बहने तक का मुझे एहसास नही हुआ । मै समर्पण के विषय मे सोचने लगी कि वह मुझसे दूर क्यो हो गया ? यह प्रश्न सामने आते ही विगत अनेक वर्षो के हमारे सम्बन्धो की पूरी पुस्तक के पृष्ठ-दर-पृष्ठ खुलने लगे और मैं उन्हें देखती-पढ़ती गयी । मुझे एहसास हुआ कि मै उससे प्रेम तो करती हूँ, किन्तु मेरा अहम् उसे अभिव्यक्त नही होने देता . इतना ही नही, अपितु मैं बात-ही-बात मे यह बताने की चेष्टा करती रही प्यार-व्यार मे मेरी कोई दिलचस्पी नही है.. मेरे जीवन में न तो उसका कोई महत्त्व है . न ही कोई स्थान । आखिर पत्थर से अपना सिर कोई कब तक फोड़े ? एक दिन इसी तरह की मेरी बेरुखी से वह रुष्ट होकर चला गया.. फिर लौटकर नही आया ।

मै इतनी परेशान-बेचैन हो गयी हूँ... समझ मे नही आता क्या करूँ... ? जीवन भारी लगने लगा है । अब मै ईश्वर की मूर्ति के समक्ष समर्पण के लौट आने हेतु प्रार्थना करने लगी । ●

सम्बन्ध

आज वह मेरे स्कूल आया और चला गया । मुझे अजीब लगा, ऐसा क्यो हुआ ? वह आया और शिष्टता से बैठा रहा और मैं अपने कामो मे व्यस्त रही । उसने मुझे टोका भी, मगर मैने कहा, "बोलते रहिए, मै सुन रही हूँ ।" वह चुप हो गया ।

"अच्छा मै चलता हूँ.. ।"

मैंने उसे रोका नही । किन्तु मन कहता था कि उसे रोक लूँ । किन्तु मस्तिष्क कहता है, क्या होगा ? देखा जायेगा । वह चला गया ...मेरा मन बेचैन हो गया । समझ मे नही आया कि क्या करूँ ? मन बहलाने की कोशिश भी की, लेकिन सिर भारी होने लगा, लगा कि घर न गयी तो शायद खड़ी न रह सकूँ और गिर पड़ूँ । अतः, स्कूल से छुट्टी लेकर घर चली गयी ।

घर आते ही पूछा, "कोई फोन आया था ?"

"हाँ ! राधे बाबू का फोन था । ?"

"और किसी का ?"

"नही ।" संजीव का तो. .फिर सकोचवश बात अधूरी छोड टेलीफोन डॉयल करने लगी, "क्या कर रहे हो ?"

"कुछ नहीं ! तुम कहाँ से बोल रही हो ?"

"घर से बोल रही हूँ. तबीयत ठीक नही थी । अतः छुट्टी लेकर.. " उसने मेरी पूरी बात भी नहीं सुनी और कहा, "तुम चिन्ता मत करो मै डॉक्टर लेकर आ रहा हूँ..।"

मैने कहना चाहा कि इसकी कोई जरूरत नही है मगर तब तक वह फोन रख चुका था । ●

रागात्मकता

विगत कई दिनो से देख रही हूँ कि वह क्लास मे आता तो है, मगर खोया-खोया-सा रहता है । पहले की तरह खुलकर बात भी नहीं करता । उसकी यह चुप्पी मुझे डराये जा रही है । मै भी बहुत परेशान हूँ, किन्तु मै उसके समक्ष प्रत्यक्ष नही होना चाहती कि मै भी मेरा अहम बार-बार सामने आ जाता है । खैर, आज मौका मिलते ही उससे पूछूँगी ।

इतना सोच ही रही थी कि गीता ने टोका, "किन ख्यालो म खाई हो ?"

"बकवास बन्द कर. यह बता सुमित को देखा है ?"

"लायब्रेरी मे बैठकर पढ़ रहा है. चलो मै भी चलती हूँ ।"

"तो तू ही जा... मै बाद मे देख लूँगी ।"

"अरे जा मर ! तू ही जा ।" वह हँसने हुए क्लास की ओर मुड़ गयी और मै लायब्रेरी चली गयी । देखा वह किसी पुस्तक मे डूबा हुआ है । मैने टोका, "कुछ विशेष पढ़ रहे हो ?"

"नही यो ही .कुछ विशेष नही ।"

मन हुआ पूछूँ कि क्या बात है ? "अपनी मनमीता से आजकल बोलते क्यो नही ?"

"नही । ऐसी बात तो नही है. "

"तो फिर...।"

"नही ! कुछ नही... कुछ भी तो नही ।" मै जो कहना चाहती थी...नही कह सकती अह्म ने रास्ता रोक दिया और मै क्लास मे चली आयी... सोचा, वह सदैव की भाँति मेरे पीछे-पीछे दुम हिलाता चला आएगा. मगर ऐसा नही हुआ । वह आया तो, मगर काफी देर बाद... आया भी तो चुपचाप बैठ गया । गुमसुम... मेरी तरफ देखा तक नही । मैने उसकी ओर देखा.. सोचा, वह और कुछ नही, स्माईल तो पास करेगा, ऐसा भी नही हुआ । मैने पुस्तक खोली और पढ़ने का अभिनय करने लगी ।

मै देख भी नही पायी.. वह कब उठकर क्लास से जा चुका था. . मुझे अपने पर गुस्सा आने लगा. समझ मे नही आया कि क्या करूँ... अपनी बेबसी पर रो पड़ी. अपने अह्म को कोसने लगी । ●

प्रौढ़ प्रेम

सपन को जब मैने बताया है कि मैं आज से बारह दिन के अवकाश पर जा रही हूँ, तो वह उदास हो गया। मैंने चाय मँगवाई, मगर अन्य दिनो की तरह उसने चुस्कियाँ ले-लेकर चाय नही पी बस जैसे-तैसे घोट गया, जैसे कोई कडवी दवा पी रहा हो। बारह दिनो हेतु उससे अलग होना मुझे भी अच्छा नही लग रहा था। मगर विवशता है घर पर एक शादी है जाना ही था टाला नही जा सकता, मैंने अपने भीतर को बाहर नही आने दिया मैंने ऐसे अभिव्यक्त किया, जैसे मुझे कोई परवाह नही. सामान्य बात है। मगर जैसे-जैसे सपन को देखती गयी मेरा इरादा डगमगाने लगा। लगा कि अपना प्रोग्राम रद्द कर दूँ परिवार के अन्य लोगो को भेज दूँ, कोई भी बहाना बना दूँ. किन्तु मेरा अहम् पुनः जागृत हो उठा नही। मैं अपने को कमजोर नही पड़ने दूँगी.. सपन को अपनी कमजोरी का एहसास नही होने दूँगी।

एकदम खामोश बैठे सपन की चुप्पी को मैंने भग करने का प्रयास किया, "क्या बात है सपन ? अपनी महिमा से बोलोगे नही ?"

"तुमसे नही बोलूँगा तो जीऊँगा कैसे.. तुम तो मेरी ऑक्सीजन हो।"

"तुम मेरी ऑक्सीजन हो" इन शब्दो ने मुझे भीतर तक भावुक कर दिया. मैं भी चुप हो गयी समझ में नही आया कि क्या कहूँ और क्या करूँ ? मेरी नजर दीवार पर लगी घड़ी की ओर चली गयी... मेरी गाडी का समय निकट आता जा रहा था. सपन ! मेरी यात्रा मगलमय हो। नही कहोगे ?"

"हाँ ! हाँ !! क्यों नही ? तुम्हारी यात्रा मगलमय हो, महिमा।"

"तो मै चलूँ ?"

"नही महिमा ! तुम्हे जाते हुए मै नही देख सकता। अतः, पहले मुझे ही चला जाने दो.।" और वह चला गया।

उसके इस वाक्य ने मुझे भावुकता की अन्तिम सीमा तक भावुक कर दिया.. मै जाते हुए उसे देखती रही मेरी समझ मे नही आया कि मैं उसे विदा दे रही हूँ, या वह मुझे और अपने रुधे गले को साफ करते हुए, मै चलने की तैयारी करने लगी। ●

असर

वह रोज मिलने आता था। मै बोर हो जाती थी . उसका एक ही प्रलाप था या तो मेरी प्रशसा करना या स्वय अपनी। शेष दुनिया से उसने स्वय को काट लिया था। उसकी यह स्थिति अपने स्वार्थ मे तो मुझे कभी-कभी अच्छी भी लगती, पर कभी-कभी ऊब भी कुछ कम नही होती थी। जब वह मेरी प्रशसा कर रहा होता, तो भीतर से मै फूली न समाती। किन्तु उसे ऊपर से यही कहती कि बस बहुत हुआ। तुम्हे कोई काम नही है. दिनभर अपना समय तो बरबाद करते हो हो, मेरे समय की भी तुझे चिन्ता नही रहती है।

मुझे क्या पता था, मेरे इतने बड़े प्रशसक को मेरी कोई बात बुरी भी लग सकती है एक दिन गुजरा, दूसरा दिन भी गुजरा। क्रमशः बढ़ते दिनो के साथ-साथ मेरी बचैनी भी बढने लगी.. मैं नित्यप्रति उसकी प्रतीक्षा करती.. दरवाजा जरा-सा भी खटकता, तो मुझे लगता, वही होगा.. मै अपने को व्यस्त होने के प्रदर्शन हेतु कोई किताब आदि लेकर बेठ जाती. उसे न पाकर लज्जित हो जाती।

समझ मे नही आ रहा था कि उसे कैसे बुलाऊँ ? मेरा अहम् आडे आ जाता था। धीरे-धीरे उससे मिलने की बेचैनी बढन लगी मन हुआ उसके किसी मित्र से उसके हाल समाचार ले लूँ कही वह अस्वस्थ तो. नही। नही !! वह अस्वस्थ नही हो सकता. . ईश्वर उसे सदा स्वस्थ रखना. उसे लम्बी आयु देना.. एकाएक मैं अपने इन शब्दो से स्वयं लज्जा कर गुलाबी हो गयी. मै सोचने लगी मै उसके लिए इतनी बेचैन क्यो हूँ ? मेरी उसकी क्या तुलना. . मै कहाँ... वो कहाँ। हम दोना के स्टेट्स मे बहुत फर्क है...

दरवाजा फिर खटका..." इसबार मै फिर लपकी.. " अरे आप प्रसून जी।"

"कहिए..।"

"कुछ नही, यो ही इधर से गुजर रहा था, सोचा आपसे मिलता चलूँ।"

"अच्छा किया आपने ?" अब मुझसे रहा नही गया, किन्तु बहुत ही हल्के ढग से पूछा, "सलिल के क्या समाचार है ?" इधर उसका कुछ पढ़ने-लिखने को नही मिल रहा है।"

"अरे ! आपको पता नही ? वह तो जीवन-मृत्यु से सघर्ष कर रहा है !"

"क्या !... क्या हुआ उसे ?"

"यह तो पता नही परन्तु वह कुछ खाता-पीता नही. . नित्य-प्रति सूखकर काँटा हो गया है।"

"क्या ?"

"हाँ !"

मै भीतर तक चिन्तित एवं परेशान हो गयी और सारे अहम् को एक तरफ रखकर उससे मिलने चली गयी। ●

तलाश का अंत

आज वह मेरा मब कुछ है । उसके बिना दो घडी भी व्यतीत करना कठिन हो जाता है । दो दिनो से वह शहर से बाहर है, लगता है जैसे पूरा शहर वीरान है । सोच रही हूँ कि एक दिन वह भी था जब मिलते-मिलते मुझे उमसे प्रेम हो गया था । नारी जाति की यही तो विडम्बना है कि वह सब कुछ जो कहना या करना चाहती है, नही कर पाती है । मै भी तो उसका अपवाद नही थी ।

उस दिन जब वह समय पर नही आया, तो मै बचैन हो उठी थी... मैं अकेले मे जो कुछ भी बडबडा रही थी, मुझे पता भी नही चला, उसने मेरी बातो को रिकॉर्ड कर लिया। जब मैने पूछा, " तुम कबसे मेरी बाते सुन रह हो?"

"जब से तुम बोल रही हो ।" मै लजा गयी और दूसरे कमरे मे जाने लगी तो उसने मेरा हाथ पकड लिया ।

"सुनिश्चित । तुम समझते क्यो नही. घर मे सभी लोग है. यदि किसी ने देख लिया तो..।"

उसने ईयर फोन लगाकर मुझे रिकॉर्ड किया कैसेट सुना दिया... जिसे सुनते ही मै पसीने स नहा गयी.. और मै उसे घर के बाहर बगीचे मे ल आयी "सुनिश्चित । तुमने यह अच्छा नही किया मै तो तुम्हार शिकजे मे फॅस गयी हूँ । तुम मुझे कभी भी ब्लैकमेल कर सकते हो .मुझ चाहे-अनचाह क्या अब तुम्हारी हर बात माननी पड़ेगी ?" इतना सुनते ही उसने रिकॉर्डर से कैसेट निकाला और पथरीली जमीन पर उसे दे मारा. कैसेट टूट गया उसका फीता हवा मे लहराने लगा । उसने फीते को पकड़-कर असख्य टुकडो मे बाँट दिया... और बडबड़ाने लगा, "मिली । सुनिश्चित अपने जीवन मे भी अपने नाम के अनुकूल है मै तुम से प्रेम करता हूँ . प्रेम मे किसी को नगा नही, उसे ढका जाता है .समझी ! जबरदस्ती शरीर तो पाया जा सकता है, मगर प्यार नही ।" कहते-कहते वह बुरी तरह हाँफने लगा था ।

आज मै स्वय अपने जीवन के विषय मे सुनिश्चित हो गयी थी कि आज मेरी तलाश सफल हो गयी ... सुनिश्चित ! ●

अविश्वास

मैं जरा किसी कार्य से कुछ मिनटो हेतु बाहर निकलन लगी तो मेरी दृष्टि अलमारी पर चली गयी । वह खुली थी और उसमे पैसे रखे हुए थे । जाते समय मैंने उसमे ताला लगा दिया ।

सत्येन जो मेरे पास ही बैठा था, कहने लगा, ''क्या बात है, ताला लगाकर जा रही हो क्या मुझपर भरोसा नही है ? यहाँ मेरे सिवा और है कौन ?''

''तुम पर तो भरोसा है . परन्तु अपने पर नही है अन्यथा न लेना ।''

''मतलब ! मै कुछ समझा नही ।''

''देखो । मै भुल्लकड़ हूँ, कही भी कुछ रखकर भूलभाल जाती हूँ... कही किसी का क्या दे ले लिया, स्मरण नही रहता है ।''

''तो !''

''मान लो मै अलमारी खुला छोड गयी और मैने कल किसको क्या दे दिया मुझे याद न रहा और मझे लगा पैसे कम है . तो शक किस पर जाएगा. . मै तुमस कुछ कहूँ या न कहूँ.... शक तो शक है. मै तुम्हे खोना नही चाहती ।'

मैने देखा वह चुपचाप खामोश मेरा चेहरा देखता रहा, कुछ बोला नही और उठकर चल गया । ●

निर्णय

मै जब सुनद के दरवाजे पर पहुँची, तो मेरा शक विश्वास म बदल गया । मेरा सन्देह ठीक निकला, "सुनद अपने मित्र से आत्म ग्लानि भरे स्वर मे कह रहा था, "मैंने अपना रुतबा दिखान के ख्याल स, उसे पन्द्रह हजार का चैक दे दिया है मेरे खाते मे हजार से ज्यादा नही होगे चेक बाउन्स हो जाएगा क्या वह मेरा मुँह देखना पसद करेगी ?"

उस बेचारी के साथ तुमने अच्छा नही किया. आपस में इस प्रकार छी ! इस दिखावे की क्या जरूरत थी.. प्रेम मे इसकी कोई आवश्यकता नही होती.. तुम्हे शर्म आनी चाहिए ।"

"तुम ठीक कहते हो... मै नीच हूँ.. न जाने वह मेरे विषय मे क्या सोचती होगी ?"

"प्यार करने वाले एक दूसरे के अवगुणो उछाड़ते नही, अपितु उनपर पर्दा डालते है . यदि वाकाई वह तुमसे प्यार करती है, तो वह तुम्हे अवश्य ही क्षमाकर देगी... लेकिन तुम्हे भी प्रतीक्षा करना चाहिए कि भविष्य मे इसी के साथ नहीं, किसी के साथ भी ऐसा नही करोगे ।"

मै शपथ लेता हूँ, मै इसकी पुनरावृत्ति नहीं होने दूँगा । "इससे आगे मै नही सुन पायी . मै दबे पॉव लौट आयी और रास्ते मे अनेक प्रकार की बातें दिमाग मे उमड़ने-घुमडने लगी. अन्ततः मैंने निर्णय लिया... में वह चैक यह कहकर लौटा दूँगी कि याद मैने तो तुम्हारी परीक्षा ली थी कि तुम मेरे लिये क्या कर सकते हो.. मुझे पैसे की आवश्यकता थी ही नही और मै उसको चैक लौटाकर उसको उसकी नज़रो से गिरने से बचा लूँगी... मै उसे दिगम्बर नहीं करूँगी । ●

अण्डरस्टैंडिंग

मैंने जब सुना कि सुदामा एक बडा अफसर बन गया है, तो मेरी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। मैं उसे बधाई देने हेतु उसके निवास की ओर चल पड़ी। बाहर दरवाजे पर एक दरबान–सा प्रतीत होता, व्यक्ति बैठा था। मैंने जैसे ही भीतर प्रवेश करना चाहा, उसने मुझे रोक दिया, "मैडम ! किससे मिलना है, आपको ?"

"सुदामा से मिलना है।"

"साहेब अभी सो रहे है... बाद मे आइएगा।"

मेरे स्वाभिमान को जबरदस्त झटका लगा, किन्तु मैंने स्वयं पर नियंत्रण रखते हुए दरबान से कहा, "तुम जाकर कहो मोनल मिलना चाहती हैं।"

"आपसे कहा न वो सो रहे हैं... बाद मे आइएगा।"

मेरा स्वाभिमान आहत हो उठा। मैं घर लौट चली, किन्तु कुछ ही कदम लौटी थी कि मन मे विचार, आया मैं गलती पर हूँ सुदामा तो अनभिज्ञ है... दरबान अपने कर्त्तव्य पर है... मुझे फोन करके जाना चाहिए था.. यह सोचकर मैं पी.सी.ओ. की ओर बढ़ गयी। ●

भटकन

मुझे उस बेचारे की स्थिति पर प्राय: रहम आया रहा । मगर मै करती भी क्या ?

उसने शादी की, सोचा था पत्नी, मित्र एव प्रेमिका की भूमिका का निर्वाह कर देगी । जीवन मे जो प्रेम कही नहीं मिला, उसकी पूर्ति करके वह जीवन को धन्य कर देगी मगर हाय रे किस्मत । ऐसाकुछ न हो सका बच्चे पैदा होते ही वह मात्र माँ बनकर रह गयी और प्यासा-का प्यास ही रह गया और पुन: प्यार की तलाश में लग गया । जीवन भर सिकी तलाश रही.. जीवन के अन्तिम पडाव पर उसे मिली भी तो वह भी उसे अपने निजी कारणो एव सामाजिक दायित्वो की वजह से चाहकर भी प्यार न दे सकी... वह फिर 'मेरा नाम जोकर' के नायक की तरह इस भरी-पूरी दुनिया मे अपने आपको अकेला महसूस करने लगा ।

वह सोचता कि ईश्वर की ओर ध्यान लगाया जाए, मगर उधर भी ध्यान नही लगा . ईश्वर ने भी शायद अपनी शरण मे रखने से इकार कर दिया था... वह अपने को पुन: चिन्तन-मननएव अध्ययन मे डुबाना चाहता था मगर उसमें भी उसका मन नहीं लग रहा था.

ऐसे मं जीवन के चौराहे पर अनिर्णय की स्थिति मे खडा, निर्णय की तलाश मे था. .. सोचते-सोचते वह उसी चोराहे पर गिर पडा और उधर से आती हुई मारूति ने उसके जीवन का निर्णय कर डाला ।

मैने जब उसके जीवन के अन्त का समाचार पढा, तो सोचने लगी... काश ! मै उसके लिए कुछ कर पाती हाय रे विधाता ! तूने मुझे इस योग्य क्यो नही बनाया कि मै उसके जैसे प्रेमी-हृदय हेतु कुछ भी तो कर पाती, ताकि वह निर्णय की स्थति मे तो नही मरता. .. ईश्वर उसकी आत्मा को चिर, शाति प्रदान करे । सोचते-सोचते मैं बहुत ही भावुक हो चुकी थी । ●

लाचारी

हमे एक गोष्ठी मे जाना था और यह महज सयोग ही था कि सरोज और मै टैम्पू स्टैण्ड पर दो-तीन आगे-पीछे पहुँचे । वह जाकर टैम्पू पर पहले बैठ गया । मैने उसे देख लिया था । किन्तु मै देखकर के भी अनदेखा कर गयी क्योकि मै उसके साथ बैठकर नही जाना चाहती थी, कारण हमारा रूढियो से भरा समाज जो बात का बतगड बनाने मे तनिक भी देर नही लगाता किन्तु सरोज दुनिया और समाज को ठेगे पर रखकर चलाता है उसे किसी बात की कतई कोई परवाह नही रहती ।

टैम्पू की ओर बढ़ती हुई मै सोचने लगी कि कल रात उससे फोन पर बात हुई थी उसने पूछा था कि गोष्ठ मे कैसे जाओगी । मैने कहा था कि कोई स्कूटर या गाड़ी वाला परिचित मिल गया तो उसके साथ, नही तो टेम्पो से चली जाऊँगी । सरोज ने कहा था तो क्यो नही मेरे घर से होकर चलो- दोनो साथ चलेगे । उत्तर मे मैने इतना ही कहा- ऐसा हनी है । मै जानती हूँ ऐसा हनी है इन तन शब्दों नपूरी रात उसे सोने नही दिया होगा.. मगर मैने जीवन मे इतना धोखा खाया है... अब मुझे किसी पर सहज विश्वास नही होता. मै करना भी नही चाहती ।

उसे टैम्पू मे बैठा देखकर मै घबरा गयी जिनकी नजरे चार हुई । तो या तो वह मुझे बुला लेगा या वह स्वय उतर कर मेरे पास आ जाएगा । ईश्वर से प्रार्थना कने लगी कि वह मुझे न देखे और उसका टेम्पू पहले चला जाए या मै उसके पीछे जिस टैम्पू पर बैठू वही पहले चल दे । यही हुआ मेरा टेम्पू पहले चल दिया और मै गोष्ठी स्थल पर पहुँच गयी, वह मुझसे दो-ती मिनट बाद मे पहुँचा ।

''मैने कहा, ''मै भी बस अभी-अभी आयी हूँ ।''

''मै जानता हूँ.. तुम जिस टैम्पू पर आयी हो वह हमारे टैम्पू से पीछे खड़ा था किन्तु वह पहले चल दिया और तुम पहले पहुँच गयी । इच्दा हुई तुम्हे बुला लूँ... या मै भी तुम्हारे पास आ जाऊँ.. मगर तुम्हे नजर चुराते देखकर.. मै वही बैठा रहा ।''

इतना कहकर वह गोष्ठी मे आये अन्य लोगो से बातचीत करने मे व्यस्त हो गया और मे अपनी चोरी पकड़ी जाने पर स्तब्ध खड़ी रह गयी । ●

आस्था

सत्यजीत आज बहुत खुश था । वह मीनाक्षी से बहुत कुछ कहना चाहता था । क्या-क्या बातें कहनी है– वह पूरे रास्ते सोचता गया । जैसे ही उसके घर पहुँचा तो देखा वह बिछावन पर पड़ी है । उसका चेहरा देखकर वह समझ गया कि मीनाक्षी अस्वस्थ है । मीनाक्षी तुरन्त उठकर बैठ गयी ताकि सत्यजीत उसे बीमार समझ कर परेशान न हो जाए ।

"मीनाक्षी लगता है, तुम्हारी तबीयत ठीक नही है ।"

"ठीक तो हूँ...क्या हुआ है मुझे..तुम्हे तो कुछ वहम हो गया है ।"

"नही मीनाक्षी । तुम किसी और को बनाओ तो बनाओ..मगर मुझे धोखा नही दे सकती. मेरा हृदय झूठ नही बोल सकता. ।"

वह सोचने लगी..इसकी आत्मा का संबध मेरी आत्मा से हो चुका है.. मुझे कुछ भी होता है... इसे तुरन्त एहसास हो जाता है.. उसे अपने पर गर्व हो आया... वह प्रसन्नता से अभिभूत हो गयी. प्रसन्नता उसकी आँखो से बहने लगी. ..। उसकी आँखो से बहते पानी को देखकर वह भी रुआँसा-सा हो गया ।

"मीनाक्षी । देखो अपने को सभालो .नही तो मै भी रो दूँगा ।"

"नही. तुम ऐसा नही करना .।"

"तो फिर सच बताओ.. तुम्हे हुआ क्या है ? तुमने मुझे खबर क्यो नहीं भिजवायी ?"

"देखो । तुम तो नाहक परेशान हो जाते हो. मै तो ठीक हूँ. ।" इतना कहते-कहते उसे खाँसी-सी आ गयी ।

"यह क्या है ?.. यह खाँसी कैसी..?"

"अरे यार !...कुछ भी नही है .यो ही जरा-सी..।"

"दीदी ! क्यो झूठ बोल रही हो ?" उसके भाई ने डॉक्टर का प्रेसक्रिप्शन एव जाँच की सारी रिपोर्टे सत्यजीत के सामने लाकर रख दी ।

उसे समझ तो कोई विशेष नही आयी .मगर उसे यह एहसास हो गया. चिन्ता की बात तो नही है..मगर तबीयत उसकी ठीक नहीं है...। उसने रिपोर्टे उसके भाई को लौटा दी. और चिन्तामगन हो गया ।

मीनाक्षी से उसकी परेशानी देखी नहीं गयी वह उठी और उसने उसे सीने से लगा लिया सत्यकाम । तुम्हारी दुआओ से कल मै तुम्हे अवश्य ही ठीक मिलूँगी ?"

जिस विश्वास से मीनाक्षी ने सत्यकाम से कहा.. सत्यकाम को भी लगा कि ईश्वर जरूर उसकी प्रार्थना सुनेगे । वह भीतर तक खिल उठा । ●

कच्ची बुनियाद

सत्यजीत बहुत ही भोला सकोची और भावुक लड़का था। मैट्रिक पास करने के बाद उसन फिल्मे देखनी शुरू की। वह फिल्मे देखत-देखते स्वय को नायक के स्थान पर की कल्पना मे खो जाता। प्रेमपरम फिल्मो एव दृश्या मे वह इस कदर डूब जाता कि एक काल्पनिक नायिका ने उसके दिलो-दिमाग में स्थान बना लिया और वह उसकी यादो मे डूबा रहता। आदत के अनुसार वह उसकी स्मृति मे खोया हुआ ही था कि उसकी क्लास-फैलो मनीला उससे नोट्स मागने आयी, जिसने उस कक्षा मे कभी गौर से नही देखा था। पर आज उसने उसे गौर से देखा, तो दखता ही रह गया। शायद यही मेरी प्रेमिका है। उसने सोचा आज यह अच्छा अवसर है, उस अपने दिल की बात कह देनी चाहिए .फिर उसके मन मे ख्याल आया..पहले उस अपने नोट्स देकर ऑबलाइज तो कर दूँ। अतः, वह कमरे मे आया और नोट्स लाकर उसक हाथो मे थमाते हुए बोला, "मनीला ! यो तो मै नोट्स किसी को देता नही.. पर तुम्हारी तो बात ही कुछ और है .।"

"अगर तुम किसी को नही देते हो, मुझ भी मत दो..मै किसी और से ले लूँगी..तुम्हारा घर मेरे घर से निकट था इसलिए चली आयी...।"

"अरे नहीं मनीला ! तुम गलत समझी तुम्हारी बात ही कुछ और है. ।"

"मेरी क्या बात और है..मै समझी नही .साफ-साफ कहो क्या कहना चाहते हो ?"

"तुम तो मेरी जान हो यह नोट्स तो क्या मै तो तुम्हे.." इससे पूर्व कि वह आगे और कुछ कह पाता "चटाक्" से एक आवाज बड़ी तजी से गूँजी..."बदतमीज ! मै तुम्हे एक अच्छा विद्यार्थी समझती थी..मगर तुम तो बहुत ही घटिया और थर्ड क्लास आदमी निकले..।" 'अक्क्' से थूकते हुए उसने नोट्स उसके मुँह पर दे मारे और दरवाजे स बाहर चली गयी।

नोट्स के उडते हुए पन्न उसे ऐसे लग रह थे, जैसे उसके सपने उड़कर इधर-उधर बिखर गए है।"

इधर "चटाक्" की आवाज सुनकर सत्यजीत की बहन आयी "क्या हुआ भैया ? यह चॉटे- जैसी आवाज कहाँ से आयी और वह जो लडकी आयी थी, कहाँ गयी ?"

"अरे जाओ ! तुम अपना काम करो. तुम्हे भी न जाने क्या-क्या दिखायी और सुनायी पडता है।" यह सुनकर उसकी बहन ना चली गयी. अब वह अपने गाल को सहलाते हुए ग्लानि मे डूब रहा था कि कल क्लास मे वह उसका एव अन्य लोगो का सामना कैसे कर पाएगा ? ●

भावुकता

स्निग्ध अपने कमरे में बिल्कुल अकेला बैठा किसी की याद मे खोया हुआ था । वह सोच रहा था, वह परसो मेरे पास आएगी । इस बात से जहाँ उसके हृदय में कुछ गुदगुदी-सी हो रही थी, वही कही उसके हृदय मे मीठा-मीठा-सा दर्द भी हो रहा था । उसका मन किसी काम मे नही लग रहा था । रह-रहकर उसके समक्ष मुस्कान लिए ममता की प्यारी-सी छवि उभर आती. मगर जैसे ही वह यथार्थ के धरातल पर आता बेचैनी से तड़प उठता ।

अगले दिन वह ममता से मिलने उसके कार्यालय गया । अपनी आदत के अनुसार वह दिए गए समय पर उपस्थित नही थी । उसे बहुत दु:ख हुआ । उसे ऐसा महसूस हुआ कि जेसे उसके स्नेह की सरेआम खिल्ली उड़ायी जा रही हो । वह इस पीड़ा का घूँट पीकर रह गया । वह जैसे ही उसके कार्यालय का बद दरवाजा देखकर लौटा कि कार्यालय के एक व्यक्ति ने टोका, ''क्या महाशय ! देवी जी नहीं है ?''

यह प्रश्न सुनते ही वह कट कर रह गया । उसे अपने पर झुंझलाहट हो आयी... वह सोचने लगा कि वह क्या करे ? कहाँ जाए. जो वह चाहता है...वह उसके वश की बात नही है । उसकी आँखे भावुकता से भर गयीं...

वह प्रतीक्षारत था..इतने मे ममता आ गयी और चहकते हुए बोली, ''मै सुबह ही आ गयी थी मन हुआ कि रास्ते मे रिश्तेदार से मिलती चलूँ मगर फिर ध्यान आया कि तुम्हे समय दिया हुआ है..बस मै चली आयी ।''

उसके इस वाक्य ने उसे यह सोचने हेतु विवश कर दिया कि वह क्या इतना बेचारा हो गया है कि उसे लोगो के रहमोकरम पर जीना पड़ेगा । वह भीतर-ही-भीतर रो पड़ा .उसके भीतर-ही-भीतर हाहाकार मच गया...वह बिना कुछ बोले चुपके से उठा और उसके कार्यालय से निकल गया । ●

इन्तज़ार

भूल किसकी कहूँ ? अपनी या समय की...या फिर भाग्य को दोष दूँ, समझ मे नही आता । वह जो मेरा साथी था, न जाने क्यों मुझसे दूर, बहुत दूर चला गया है । बात क्या थी. शायद कुछ भी नही और शायद बहुत बड़ी ।

मै नर्सिग होम मे भर्ती थी... वह डॉक्टरो एव पैथेलॉजिस्टो तक दौड़-धूप कर रहा था ..पूरी देखभाल मे उसे सर्वाधिक मेरी चिन्ता थी । बिना खाये-पिये ही वह लगा रहता । मै किसी तरह ठीक हो जाऊँ । यही चिन्ता थी उसे ।

उस दिन नाक मे लगी नली से मुझे ऊब हो रही थी । मै चाहती थी कि उसे निकाल दिया जाए ताकि आराम से सो सकूँ । लेकिन वह अडा रहा कि जब तक डॉक्टर नही कहेगे .. यह नली इसी प्रकार लगी रहेगी.. मेरे बार-बार आग्रह करने पर भी जब वह नही माना तो मुझे क्रोध आ गया । मेरे मुँह से निकला, "तुम कौन होते हो ? इस प्रकार जिद पर अडने वाले.. मेरे जो मन मे आयेगा करूँगी । तुम मेरे हो कौन ?...सगे सम्बन्धी ?. एक मित्र ?" मेरे क्रोध को वह सह नही सका और चला गया ।

उसके जाने पर मुझे इतनी ग्लानि हुई कि मैने नली नही उतारी.. चिकित्सा चली मै शारीरिक रूप से बिल्कुल स्वस्थ हो गयी मगर मन उसे देखने हेतु बेहाल है..कभी अवश्य मिलेगा...

इसी आशा मे जीवन को स्मृतियों के सहारे व्यतीत करती जा रही हूँ...प्रतीक्षा जीवन के अन्तिम क्षण तक बनी रहेगी । ●

व्यावहारिक सोच

"समर ! आज तुम्हारे टेलीफोन का उपयोग करना चाहती हूँ...मेरा टेलीफोन खराब है।"

"क्यो नही....शौक से । मेने क्या कभी मना किया है ?"

"कभी की बात और है. ..बात ये है कि परसो हमारे कार्यालय मे फक्शन हैं. उसका सारा काम मुझे ही दखना है...।"

"तो. ।"

"चाहती हूँ फोन से एक बार सब को स्मरण दिला दूँ ।"

"क्या कार्ड नही छपे ?"

"कार्ड तो छपे है, बॉट भी दिये गए है. मगर फिर भी सबको याद दिला दू ताकि उपस्थिति अच्छी हो जाये । '

"तो मतलब यह हुआ मानसी । तुम करीब पन्द्रह-बीस फोन तो जरूर करोगी...।"

"हॉ ! वो तो है... " मानसी ने कहा ।

समर एकदम खामोश हो गया । वह सोचने लगा पन्द्रह-बीस फोन का मतलब सरकारी रेट से भी प्रति कॉल एक रुपए बीस पैसे .अभी वह इसी सोच मे डूबा हुआ था कि मानसी ने उसके मनोभावा को पढते हुए कहा, "अरे समर ! तुम यो ही परेशान हो गए ! मै तो मजाक कर रही थी...मै तो कमाती हूँ पच्चीस-तीस रुपए खर्च कर देना कौन-सी बडी बात है " वह उठी और चल दी. .चलते हुए सोचन लगी.. इसके साथ जीवन कैसे कटेगा...नही !. ..यह मेरे योग्य नही, जो मेरे लिए जान तक दे देने की बाते करता है । पच्चीस-तीस रुपए के लिए. ..। उसे स्मरण आया । उसने किसी पत्रिका मे पढ़ा था आज के इस भौतिकवादी युग में पैसा बहुत बड़ी चीज है पैसा ही खरीदा जाता है..पैसा ही बेचा जाता है यहाँ प्यार. . या अन्य भावनाओ का कोई अर्थ नहीं है..। उसके जाते-जाते समर ने आवाज भी दी, "मानसी ! लौट आओ ।" मगर मानसी के दृढ़ कदम अपनी मजिल की ओर बढ़ते जा रहे थे । ●

रिश्तों की सार्थकता

"मॉ । वो अपनी मयूरा है न ।"

"क्या बात है बेटा ? आज तू बड़ा गुमसुम-सा पड़ा है ?" रमण कह रहा था कि सकोच से उसके संबंध है ।"

"तो क्या हुआ ! वह जवान है... समझदार है और यदि उसे कोई लड़का पसद है.. .तो उसमे बुराई क्या है ?"

"मॉ । मै उसे अपनी छोटी बहन मानता हूँ. कोई उसके विषय मे कुछ कहे... मुझे बर्दाश्त नही होता.. ।"

"बहन मानता क्या है ? जिससे एक बार कोई रिश्ता जोड लिया.. बस वह रिश्ता खून के रिश्ते से कही कम नही होता.. यही कारण है कि उसके विषय म किसी का कुछ कहा जाना तुम्हे बर्दाश्त नही होता ।"

"फिर भी मॉ. ।"

"फिर भी क्या... ?"

"उससे हमारे घर की भी तो बदनामी होती है .।"

"अरे । तू तो पागल है. . इसमे बदनामी क्या है.. पहले तो सुनी- सुनाई बातों पर मुझे विश्वास न करके, तुझे मयूरा से ही पूछना चाहिए.. यदि सकोच से उसके सबध है.. दोनो गम्भीर हैं .. शादी करना चाहते है तो बड़ा भाई होने के नाते तुझे अपने दायित्व का निर्वाह करना चाहिए ।"

"तू समझती क्यों नही मॉ .।"

"मै तो समझती हूँ... तू ही समझने की कोशिश नही करता... तू सोच यदि तेरी सगी बहन होती और तू उसके विषय मे यदि ऐसा सुनता तो क्या करता ?"

मॉ की बात सुनकर वह चुप हो गया. . सोचने लगा. .माँ ठीक ही कहती है... उससे मै सबध तो खत्म नही कर सकता था उसके लिए मुझे गम्भीरता से सोचना चाहिए, मै वही करूँगा जो माँ ने सुझाया है । उसकी बेचैनी क्रमशः कम होने लगी और वह अपने मन-मस्तिष्क को माँ के सुझाव के अनुसार तैयार करने लगा । ●

आलस्य

''तुम आजकल क्या लिख-पढ रहे हो ?'' मजूषा ने बहुत आत्मीय ढग से पूछा । अप्रत्याशित ढग से पूछे गए इस प्रश्न हेतु स्वप्निल बिलकुल तैयार नही था । अत: एकाएक उसके मुँह से निकला, ''कुछ खास नही !''

''मतलब ?''

''मतलब यही कि छिट-पुट के अतिरिक्त... ।''

बीच मे ही बात काटते हुए मजूषा चहकी, ''देखो ! इस प्रकार समय नष्ट करने मे क्या लाभ ? तुम एक गभीर व्यक्ति हो.. तुम साहित्य को बहुत कुछ दे सकते हो. ।''

मजूषा की मासूम बात सुनकर स्वप्निल एकाएक हँस पडा. और उसने मजूषा की ओर बहुत ही प्यार से देखते हुए कहा, ''यह तुम कह रही हो ?. ..तुमने क्या लिखा-पढा है ?''

''मैने क्या लिखा है ? मै कैसे लिखती. विगत तीन दिनो से मेरी तबीयत का हाल तुम क्या जानो. .औरत होती तो समझ लेती.. और धीरे से स्मित मुस्कान छोड़ते हुए कोई पत्रिका उलटने-पलटने लगी ।

स्वप्निल उसके चेहरे पर उभरे आलस्य के भाव पढ़ने लगा और फिर धीरे बोला, ''चलो वह तो हुआ. सुधीर की पुस्तक पर तुम्हें अपना अभिमत लिखना था....आज एक माह हो गया..लिख देती तो उसकी पुस्तक छप जाती. अनावश्यक.. ।''

''हाँ ! हाँ !! क्यो नही . अभी लो .तुरन्त ही लिख देती हूँ ।'' और वह कागज-कलम लेकर बैठ गयी.. । फिर उसने स्वप्निल की ओर देखा और बोली,'' तुम भी बैठे-बैठे कुछ क्यो नही लिखते ?''

''क्या लिखूँ ?''

''कुछ भी ।''

''ठीक है. तुम अभिमत लिखो....मै लघुकथा लिखता हूँ । ''इतना कहकर वह लघुकथा लिखने बैठ गया और मजूषा उठकर कही जाने लगी तो स्वप्निल ने टोका. '' कहाँ चली ?''

''तुम लिखो. .मै अभी आती हूँ ।'' इतना कहने के साथ ही वह हल्के-हल्के मुस्कुराते हुए चली गयी । ●

रिबाउण्ड

वह आज कई माह के बाद कार्यालय आया है। लोग व्यंग्य से पूछ रहे है, "क्या बडा बाबू। इतने दिन कहाँ रहे ?"

"आपको पता नही। पहले मै बीमार रहा था अभी भी ठीक नहीं हूँ .फिर भी.. ।"

"अरे तो क्यो चले आये ? अभी और आराम करते।"

"पहले ही काफी छुट्टियॉ ले चुका हूँ ...पैसा इतना खर्च हो गया कि कर्ज तक लेना पडा नही आता तो..।" ठंडी सॉस छोड़ते हुए बोला।

"अरे भई ! जान है तो जहान है... पहले स्वास्थ्य देखना चाहिए इसलिए अभी आप आराम करते तो अच्छा होता।"

"ऑफिस का काम भी तो देखना था काफी पेडिंग हो गया है..।"

"अरे कहाँ ? किसी के आने, न आने से ऑफिस का काम थोड़े ही रुकता है. वह तो चलते ही रहता है. बल्कि पहले से..।"

यह बात बड़ा बाबू के कान में पिघले सीसे की तरह पड़ी.. मगर चुप रहे... कुछ न बोले। मै दूर खडी सारी बाते सुन रही थी। मुझे स्मरण हो आया कि अपना महत्त्व दिखाने एव नम्बर दो का पैसा कमाने के चक्कर मे उसने न जाने कितने दुःखी दिलो की हाय ली। उसके छुट्टी पर जाने से पूर्व ही मैंने कहा था, "बडा बाबू मेरी माँ बीमार है...यदि मेरा बिल पास कर देते तो ।" मेरी बात बीच मे काटते हुए बोला था, "फड का पैसा खत्म हो गया है...नया एलॉटमेट आएगा तो फिर. ...।" मै आँखो मे ऑसू लिए लौट आयी थी। मुँह से मात्र इतना ही निकला था, "हे ईश्वर ! न्याय करना।"

इस घटना से पूर्व एक आपूर्तिकर्त्ता को रोते देखा था। मेरे पूछने पर उसने कहा था, "मेरी लडकी की शादी है..मगर बिल पास करने के नाम पर न जाने किस-किस काम के अनाप-शनाप पैसे मॉगता रहता है मै विवश हूँ देने को.. मेरी बेटी की शादी का मामला है जबकि मै अन्य-अन्य ढगो से भी उसकी फरमाइश पूरी करता रहता हूँ, फिर न जाने क्यो जोक-सा मुझे छोडता नही जब न तब मुँह खोल देता है।" मुझे उसी दिन एहसास हो गया था कि इसका किया-दिया जल्दी ही सामने आने वाला है। अपनी स्मृतियो को पीछे धकेलते हुए मै बड़ा बाबू के पास गयी, "कैसे है ?"

"अभी पूरी तरह स्वास्थ्य ठीक नहीं है ...पिता भी अस्वस्थ्य है....पत्नी ने भी खाट पकड़ रखी है।"

मैंने कहा, "इलाज कराते रहिए।"

"वो तो चल ही रहा है.....मगर कर्ज बहुत हो गया है।" उसकी ऑखों में ऑसू आ गये। उसे इस स्थिति मे देख मुझे आपूर्तिकर्त्ता का उस दिन वाला रोता चेहरा स्मरण हो आया।

मुझे चुपचाप देख उसने कहा, "आपका बिल आज जरूर पास कर दूंगा।"

"धन्यवाद ! मेरा बिल तो आपके अवकाश-काल ही पास हो गया था ..मगर आपने तो ।" इतना कहकर मै वापस आ गयी। ●

विकृति

विभाग में एक समारोह की तैयारियो के क्रम मे आमत्रण वितरित किए जा रहे थे। इसी क्रम मे साहेब ने मुझे बुलवाया और कहा, "सुनिये ! आप इस विभाग मे एक मात्र महिला है... मैं चाहता हूँ कि आप कुछ महिलाओ का भी आमत्रित कीजिए, मत्री जी भी आने वाले हैं।"

मेने उत्तर मे कुछ महिला-साहित्यकारों के नाम बताए.. कहने लगे, "अरे आप भी किन-किन का नाम ले रही है.. ये सब तो दादी-नानो है. कुछ ऐसी युवतियों को आमत्रित कीजिए कि समारोह उनकी सुगध से महक उठे और समारोह मे उबाऊ भाषणा के बावजूद कोई ऊब महसूस न करे।"

ये बात मुझे बहुत बुरी लगी और मै भीतर-ही-भीतर क्रोध से तिलमिला उठी . मुझसे नही रहा गया- मैंने कहा, "आप एक आदेश निकाल दें कि पूरे स्टाफ को अपनी पत्नी एव बेटियो के साथ उपस्थित रहना होगा। और हॉ ! आपकी भी तो बेटियाँ और पत्नी.. ।" इससे पूर्व कि साहेब मुझे कुछ कहते, मै लौट आयी। ●

प्रदर्शन

मै कार्यालय के किसी कार्य से अधिकारी के कक्ष मे गयी, वहाँ देखा उनके अनेक मित्र बैठे चाय पी रहे थे । एक चाय मेंगी ओर भी बढ़ाते हुए अधिकारी ने कहा, ''मैडम ! आप भी बैठ जाइए ।'' मै बैठ गयी ।

वह अपने मित्रो की ओर मुखातिब थे, ''मै शहर आकर भी अपने गँवई सस्कारो को छोड नही पाया हूँ । कोई दिखावा नही....सादा पहनना और सादा खाना ...यही कारण है यहाँ नागरीय सस्कृति में मै अपने को एडजस्ट नही कर पा रहा हूँ ।''

अभी वह बोल ही रहे थे कि एक सज्जन का प्रवेश हुआ । उनकी बातचीत से ऐसा लग रहा था कि वह शायद कार्यालय मे कुछ स्टेशनरी आदि की आपूर्ति करते है... मगर मैने इससे पूर्व उन्हे नहीं देखा था । मिठाई का डिब्बा आगे बढाते हुए बोले, ''सर ! आपकी कृपा से मेरा बिल पास हो गया है....।'' और उसने डिब्बा आगे बढा दिया ।

''ये क्या ले आए...मै सड़क छाप मिठाई नही खाता । लानी ही थी तो कोई बढ़िया मछली और विदेशी शराब....मिठाई लेते जाओ, अपने बच्चों को खिला देना अच्छा । तुम ऐसा करो, शाम को घर चले आना, वही बाते होंगी, इत्मीनान से ।'' वह लौट गया । अधिकारी को शायद स्मरण आ गया कि मै भी वही बैठी हूँ....उन्होंने मेरी ओर देखा और कहा ''आप ?'' इससे पूर्व कि मैं कुछ कहती, उन्होने मुझस कहा, ''फिलहाल आप अपनी टेबुल पर जाइए.... .फ्री होते ही मै आपको बुलवा लूँगा ।'' मै जैसे ही उठकर चलने को हुई, उन्होंने पुनः कहा, ''जरा बडा बाबू को कहते जाइएगा कि घर आने-जाने मे बहुत कठिनाई हो रही हैं, कार्यालय-कार को जल्दी ठीक कराने की व्यवस्था करे...रिक्शा से आने-जाने मे बदन का कचूमर निकल जाता है...बिल जो भी आयेगा मैं पास कर दूँगा ।'' मै चली आयी ।

''आपको भी धीरे-धीरे नागरीय सस्कृति रास आने लगी है...।'' यह उनका एक मित्र था ।

''अरे अधिकारी हूँ...थोड़ा-बहुत ठस्सा तो रखना ही पड़ता है....'' कक्ष से निकलते हुए मै इतना ही सुन पायी थी । ●

कुण्ठित

ऑफिस से घर लौटी तो मूड बहुत ही खराब था। किसी काम मे मन नहीं लग रहा था। रह-रहकर बस एक ही बात कचोट रही थी कि आज हमारे मैनेजर ने कार्यालय मे ही अनेक साहित्यकारों के समक्ष मेरी रचना एक श्रेष्ठ पत्रिका में छपी देखकर एक टिप्पणी जड़ दी, ''अब इस पत्रिका का स्तर भी गिरने लगा है .सम्पादक भी किसी लेखिका की रचना नहीं, उसका सुदर चित्र देखकर प्रकाशित कर देत हैं... उन्हे रचना के स्तर से कुछ लेना-दना नहीं है।''

मुझसे नहीं रहा गया तो मैंने भी लिहाज को दर-किनार करते हुए कहा, ''सर। इसम आपकी रचना और चित्र छपा देख कर ही मैं यहाँ बधाई देने आयी थी।'' इतना कहकर मै पुनः अपनी जगह लौट आयी, किन्तु मन बहुत खिन्न था।

मै सोचने लगी आखिर मैनेजर को क्या हो गया है ? मैने जिस दिन यह रचना लिखी थी, उस दिन किसी कारण वह मेरी टेबुल तक आये थे और पूछा था ''मानवी। यह क्या है ?''

''मैने संक्षेप में उत्तर दिया था, ''सर ! एक लघुकथा लिखी है।''

''क्या मै पढ़ सकता हूँ ?'' और रचना मैंने बढ़ा दी थी। पढ़कर कहा था, ''भई मान गया ! यह विधा आकार मे जितनी छोटी है, उतनी ही प्रभावकारी भी है। यह श्रेष्ठ लघुकथा है किसी श्रेष्ठ पत्रिका मे भेजो..।'' उनके सुझावानुसार ही मैंने इस पत्रिका मे भेजी थी। तब फिर आज इस रचना मे ऐसा क्या हो गया कि यह स्तरहीन हो गयी।

अभी मै अपने तनाव से मुक्त भी न हो पायी थी कि मेरी अनुजा ने मेरे हाथ से पत्रिका लेते हुए कहा, ''दीदी ! इसमे कुछ विशेष है क्या ?''

''विशेष क्या होगा ? बस एक लघुकथा छपी है।'' इतना सुनते ही वह पत्रिका के पृष्ठ उलटने लगा। एक पृष्ठ पर रुककर बोली, ''अरे। इसमें तो तुम्हारे मैनेजर की भी रचना छपी है।... रचना इतनी घटिया..छायाचित्र भी..इतनी स्तरीय पत्रिका मे यह रचना मैनेजर जो है अन्यथा।......''

मैने उसकी बात का कोई उत्तर नही दिया और वह पत्रिका देखने मे व्यस्त हो गयी. परन्तु यह तथ्य मेरी समझ मे आ गया कि मैनेजर को स्वयं अपनी रचना पढ़कर.. या अपने किसी मित्र की बेबाक टिप्पणी से... मै पुनः सोचने लगी...मुझे एहसास हुआ कि मेरी टेबुल पर आकर उनकी प्रथम दिन की टिप्पणी ईमानदार थी।

इतने मे मेरा ध्यान अनुजा की ओर चला गया, ''गरिमा ! इसमे मेरी रचना भी..'' बात पूरी होने के पूर्व ही बोल पडी ''वही तो पढ़ रही हूँ...यह रचना तो बहुत स्तरीय है।''

मै पास रखे समाचार-पत्र को उलटने लगी। ●

बहादुरी

बॉस से बुलाने पर जब मैने उसके चैम्बर मे प्रवेश किया, उसे कुछ चिन्तित एव परेशान पाया । कुछ क्षण इसे प्रतीक्षा मै रूक कर कि शायद वह कुछ बोले, किन्तु मैंने महसूस किया कि वह गम के गहरे समुद्र मे डूब-उबर रहा है । मुझे उसपर दया आ गयी और मैंने पूछा, ''आपने मुझे बुलवाया था ?''

''आ हॉ ! .. बैठिए !''

मैं सामने रखी कुर्सियो में एक पर बैठ गयी और उसकी ओर देखने लगी. . मैंने महसूस किया वह मुझसे नज़रे मिला जाने मे और कुछ कह पाने मे अपने को असमर्थ पा रहा है, तो मैने पुनः टोका, ''तो मैं जाऊँ ?''

''नही !... बैठिए !''

''मेरे टेबुल पर सारी फाइलो यो ही खुली पड़ी है ।''

''देखिए । उस दिन मै कुछ लोगो के समक्ष न जाने क्या-क्या कह गया जो शायद मुझे नही कहना चाहिए था... आपको बुरा तो नही लगा ? कही आपने अन्य लोगो से इसकी ..।''

''आज के समय प्रत्येक व्यक्ति अपनी निजी समस्याओ मे ही इतना उलझा हुआ हैं क यदि वह हर बात पर सोचने लगे बुरा मानने लगे, तो जीना दूभर हो जाएगा और मै कोई कायर महिला नही हूँ ।''

''तो !'' वह शायद कुछ कहना चाहता था, मगर कुछ न कह सका उसके शब्द उसके सुखार-बिन्दु स बाहर नही आ सक. तो उसे चैम्बर से बाहर निकलते हुए मेरे मुँह से फिसला. . ''सर ! किसी को नगा करना बहादुरी नही. टॅकना बहादुरी है । ●

मैं एक माँ भी हूँ

लच का टाइम हो चुका था। मुझे अपने निवास जाना था। मगर मेरे सामने अनेक साहित्यिक मित्र बैठ थे। कुछ सहकर्मी भी थे। मैंने प्रसगवश बातो मे बात जोडकर कहा "लच का समय हो गया है। मर समय के साथ ही मेर नवजात शिशु के दूधादि का समय जुड़ा हुआ है।" मगर मेरी बात पर किसी ने ध्यान नही दिया। वे शायद इस अपेक्षा मे थे कि चायादि आएगी, मगर मेरा ध्यान तो बेटे का दूध पिलाने की ओर लगा था। मै संकोचवश स्पष्ट कुछ कह पाने मे अपने का असमर्थ पा रही थी।

मुझे एक उपाय सूझा। मैने उन्हे को दिखाते हुए कलाई पर बधी घड़ी की ओर देखा। उनम से एक ने पूछा, "आपको कही जाना है ?"

"लंच का समय हो गया है. घर मे अपने नवजात शिशु को दूध पिलाने जाना है।"

"ओह। तब तो हमे चलना चाहिए ..।" मै प्रसन्न हो उठी कि चलो बलाएँ टली। मगर फिर देखा, वे लोग अन्य-अन्य बातो मे उलझ गए। अतः, मैंने पुनः घड़ी की ओर देखा। मुझे घड़ी की ओर देखते हुए एक अन्य बोला, "अरे भई चलिए। इन्हे बेटे को दूध पिलाने जाना है।"

"हाँ ! हाँ !! क्यो नहीं, बस उठते ही है।" मुझे झुझलाहट होने लगी....मेरा मन उचटने लगा। रह-रहकर मेरा ध्यान पुत्र को दूध पिलाने की ओर चला जाता। वे लोग क्या बाते कर रहे है.....उस ओर मेरा ध्यान कतई नही था।

"तो मैडम ! आपकी क्या राय है ?"

मै चौकी "मेरी राय ! किस बात पर ! हमलोग गुजरात में हुए दंगा पर सरकार की भूमिका की चर्चा कर रहे थे. क्या आपने ध्यान नही दिया ?"

मेरा ध्यान तो पुत्र को दूध पिलाने की ओर लगा हुआ है...आप लोग मुझे छुट्टी दे .अब मै जाना चाहूँगी.. मै साहित्यकार और सरकार की नौकर ही नही, एक माँ भी हूँ।" मैने एक झटके से पुनः घड़ी की ओर देखा और अपनी कुर्सी से उठते हुए झुझलाहट भरे स्वर में कहा, "लंच के दस मिनट तो व्यतीत हो गए है... अतः लौटने मे भी दस-पन्द्रह विलम्ब हो जाएगा।" और मै अपने निवास की ओर लपक चली। ●

अधिकार की खातिर

मरे 'प्रसव-अवकाश' का वेतन रोक दिया गया। इसका कारण समझन मे मै असमर्थ रही। प्रसव मे हुए अप्रत्याशित खर्च ने मेरा सारा बजट ढीला कर दिया। देनदारी काफी हो गयी थी। वेतन के अतिरिक्त आय का अन्य कोई साधन तो है नही। इस सोच ने मुझे तनावग्रस्त कर दिया, मैंने अपने कार्यालय प्रबन्धक के पास जाकर अपनी व्यथा को ईमानदारी पूर्वक उनके समक्ष रखा।

उन्होंने कहा, "बाद मे मिलिएगा... अभी देख नही रही हैं, मेरे सामने अनेक लोग बैठे हे।"

मे लौट आयी और एकान्त की प्रतीक्षा करने लगी। वह जैसे ही एकान्त मे हुए- मैंन पुनः अपनी व्यथा को उनके समक्ष रखा। मेरी बात की अनसुनी करत हुए उन्होंने कहा "अरे भई ! आपकी व्यथा को तो मै समझ ही रहा हूँ– मगर आप मेरी व्यथा को कब समझेगी ?"

"मतलब... ! मै कुछ समझी नही।"

"मतलब भी समझाना पड़ेगा अरे भई। वही जो एक पुरुष को एक नारी से.।"

बीच में ही बात काटते हुए मैंने कहा, "आपने रौंग नम्बर डॉयल कर दिया है. मै परशान अवश्य हूँ लाचार नही...।"

"अच्छा तो यह बात...!"

"जी ! रही बात रुके हुए वेतन की वह तो मेरा अधिकार है, वह तो मै ले ही लूँगी जरूरत पड़ी तो महिला आयोग, मानवाधिकार कोर्ट आदि कुछ भी शेष नहीं रखूँगी आखिर मै भी राजपत्रित अधिकारी हूँ...।" इतना कहकर मै झटके से चली आयी।

बाद में चपरासी से मालूम हुआ कि प्रबंधक कह रहे थे, यह मैडम तो बुझी राख मे चिन्गारी निकली और अपना-सा मुँह लिए नाखून चबाने लगे। ●

दुखती रग

अपने कक्ष मे मै सुस्त-सी बैठी अपनी समस्याओं के विषय मे सोच रही थी कि मेरी दोस्त नीता आ गयी, ''अरे मन्दिरा ! क्या बात है ? तबियत तो ठीक है न ?''

''हॉ ! ठीक तो है पर .।''

''पर क्या ?''

''देखो न ! विगत तीन-चार माह से मुझे कभी कुछ-कभी कुछ हुआ ही रहता है समझ म नही आता, क्या बात है ?''

अभी इतनी बात हुई ही थी कि हमारे विभाग मे एक क्लर्क आ गये । मैने उन्हे सामने कुर्सी पर बैठने हेतु सकेत किया । इस बीच नीता ने कहना शुरू किया,'' तू न तो किसी का बुरा करती है...न घूस लेती है.. फिर तुझे ऐसा क्या.. ?''

''अब यह तो ईश्वर जाने . ।''

''जानती हो मन्दिरा ! हमारे कर्यालय के एक सहायक थे, वे प्रति माह फर्जी मेडिकल बिल या अन्य बिल बनाकर अवैध पैसा कमाते रहे. .इतना ही नहीं कार्यालय मे सप्लायर्स से भी अच्छा-खासा कमीशन वसूल करते थे...आज क्या है कि उनके परिवार में न तो कोई व्यक्ति स्वस्थ रहता है. . न खुश.उनका भी बात-बात पर सहयोगियो से झगड़ा-झंझट होता रहता है . ।'' नीता की बात के बीच मे ही काटते हुए हमारे विभाग के क्लर्क ने कहा, ''मे ऐसा नही मानता जिसको जो होना हाता है, वह तो होता ही है ।'' ''हो सकता है ..।'' नीता ने बहस से बचते हुए धीरे से कहा ।

मगर मैने देखा क्लर्क के चेहरे का रग उड़ता जा रहा है । मैने उसकी स्थिति देखते हुए कहा, ''मगर हमारे यह बाबू कभी किसी से कुछ नही लेते, मगर फिर भी अनेक बीमारियो से परेशान रहते है ।'' क्लर्क को लगा जैसे उनका बचाव नहीं, उन्हें नंगा किया जा रहा है । मेरी बात समाप्त होते ही बोले, ''मै झूठ क्यो बोलूँ, हमे बिल पास कराने हेतु ट्रेजरी मे रुपया देना पड़ता है...कार्यालय के लोगो के बिल पास कराने हेतु उनसे तो माग नही सकता, तो सप्लायर्स से ही लेना पड़ता है ।'' इतना कहकर वह उठकर जाने लगे ।

मैने टोका, ''आप कैसे आये थे कुछ कहा नहीं और चल दिये ।''

''यो ही चला आया था.. फिर आ जाऊँगा ।'' नीता की ओर घूरते हुए उठकर चल दिये । ❁

स्थितियाँ

''चित्रा ! हमारे यहाँ तो इस नाम की कोई मैडम नही है हाँ एक चपरासी है क्या क्या बात है ?'' ''मैडम से आपका क्या मतलब होता है .?''

''मैडम से मतलब कोई ऑफिसर या इसी तरह कुछ..'' मैनेजर ने कहा ।

''क्या ऐसा कही लिखा हुआ है .?''

''नही !... पर आप ये सब पूछने वाले होते कौन है ?''

''मै धरना पट्टी का विधायक हूँ. ।''

इतना सुनते ही मैनेजर कुछ सहम-सा गया.. और बोला, ''सारी सर ! प्रचलन ऐसा ही है बस इसीलिए ।''

इतना सुनते ही विधायक की नेतागीरी जाग्रत हो गयी और उन्होने भाषण शैली मे कहना शुरू किया, ''जानते हो ! मैं जनता का आदमी हूँ . सत्तारूढ़ दल का विधायक हूँ..और तुम सरकारी नौकर...दाई.. चपरासी हो या मैनेजर ! सभी नौकर ही है. ।''

मैनेजर बोला, ''जी ! गलती हो गयी....''

''गलती के बच्चे ! जानते हो.. उसे सत्तापार्टी एम० एल० सी० बनाने की सोच रही है तुम्हारे विभाग की मन्त्री भी हो सकती है.. हमे जिताने मे उसने रात-दिन एक कर दिया था समझे ।''

विधायक जी अभी इतना कह ही रहे थे कि चित्रा ने मैनेजर के कक्ष मे प्रवेश किया ''सर ! मुझे तीन दिन की छुट्टी चाहिए ।'' और उसने आवेदन आगे बढ़ा दिया ।

''हाँ ! हाँ !! क्यो नही मैडम ! आप जितने दिन चाहे छुट्टी पर रह सकती है. इस आवेदन की क्या जरूरत है ?''

चित्रा ने एक ओर अपने मैनेजर को आश्चर्य से फैली नजरो से देखा तो दूसरी ओर विधायक को ! विधायक ने कहा, ''चित्राजी बैठिये ! आपसे बहुत जरूरी काम था. मुख्यमंत्री आपको एम० एल० सी० बनाना चाहते है... आपको मेरे साथ इसी समय चलना होगा ।''

''सर ! चाय आ रही है...पीकर जाइएगा ।'' यह मुरझाया-सा स्वर मैनेजर का था । ●

हक के लिए

विगत कई दिनों से वह परेशान-परेशान सा दिखता है । न तो ठीक से बात ही करता है । कुछ कहती हूँ तो अति सक्षिप्त उत्तर देकर मौन हो जाता है । उसके चैम्बर मे जाती हूँ, तो भी कोई विशेष नोटिस नही लेता । मुझसे वह बात करे न करे, किन्तु कारण तो पता चले कि किन कारणो से वह नाराज है ? यदि कोई भूल हुयी हो, तो मै क्षमा-याचना पर भी विचार कर सकती हूँ.. अन्तोतगत्वा वह हमारे कार्यालय का प्रमुख है ।

मै अपने चैम्बर मे बैठी इन्ही सारी बातो पर विचार कर रही थी कि कार्यालय प्रमुख का आदेश आया, ''मैडम ! आपको सर ने बुलाया है ।''

''चलो ! मै सारा कार्य निबटा कर आती हूँ ।''

करीब पाँच-मिनट के बाद मै उठी और प्रमुख के चैम्बर की ओर बढ गयी... वहाँ कुछ कार्यालय के लोग एव कुछ अतिथिगण बैठे थे । मुझे देखकर प्रमुख ने एक कुर्सी की ओर सकेत करते हुए बैठने हेतु कहा और मै बैठ गयी ।

मेरी ओर सकेत करते हुए उन्होंने उपस्थित लोगों से कहना शुरू किया- ''जानते है । मैडम हमे यहाँ विदा करने पर उतारू हूँ.. इन्होंने अपना बॉयो-डाटा प्रधान कार्यालय को भेजा है । यह कैडर मे है और डिग्रियों के हिसाब से मुझसे आगे है. मगर यह शायद जानती नहीं है कि सारी बातो के बाद आजकल सरकार हमारी है... मै जब तक चाहूँगा यही रहूँगा जिस दिन मै स्वय चाह लूँगा तभी यहाँ से जाऊँगा.. इतना ही नही, मेरे जाने के बाद भी यह इस कुर्सी पर नही बैठ पाएँगी . वर्तमान सरकार पुनः मेरी तरह ही कैडर से किसी बाहरी व्यक्ति को ही यहाँ बिठा देगी... सब जानते हुए इन्होने पानी मे रहकर मगरमच्छ से बैर किया . स्वय अपने पॉव पर कुल्हाडी मारी. इनसे पूछिये ! इन्होने ऐसा क्यो किया ?''

सारे लोग चुप थे । मैने भी सारी बात गभीरता से सुनी... प्रमुख इतने दिनो से एकत्र लावे को निकाल चुके थे । इसके पश्चात् प्रमुख ने एव अन्य लोगो को मेरे उत्तर की प्रतीक्षा थी... मै जानती हूँ कि सत्य-न्याय कितनो को बर्दाश्त होता है.. चापलूसो की जमात मे ज़ुबान खोलने का क्या अर्थ है ? अतः मै उठी और मैने कहा, ''सर ! अब मै जा सकती हूँ ?''

''आपको कुछ कहना नही है ?''

''झूठ मै बोल नहीं सकती... सच आप सुन नही पाऍगे.. चमचो की जमात मे कुछ भी कहना व्यर्थ ही होगा ।'' इतना कहकर मै चैम्बर से बाहर आ गयी । ●

औकात

वह कुलपति के कार्यालय की ओर चला जा रहा था। मगर एक द्वन्द्व उसे भीतर से बहुत परेशान किये हुए था कि कुलपति वही व्यक्ति है, जिसे कभी मैने फुटपाथिया साहित्यकार कहा था.. ..निश्चित रूप से मेरा चेहरा देखते हुए मनीष को याद आ जायेगा। उसे स्मरण हो आया वह दिन, जब उसने मनीष को कहा था कि वह फुटपाथिये साहित्यकार को महत्त्व नही देता, तो उत्तर में मनीष ने कहा था, "कभी-कभी अनजाने ही फुटपाथ पर भी कोहनूर हीरे जैसी नायाब चीजे भी मिल जाया करती है....पहचानने की दृष्टि होनी चाहिए। कभी-कभी बड़ी दूकानो से भी कोहनूर हीरे के धोखे में इमीटेशन मिल जाते है। सवाल फुटपाथ या ऊँची दूकान का नही, सवाल अपनी समझ एव परख का है।" इतना कहकर मनीष चला गया था, मगर भीतर तक उसे हिला गया था।

अब वह कुलपति-कार्यालय के सामने था। नेमप्लेट पर मनीष प्रसाद लिखा था। 'मनीष' नाम पढते ही उसके कदम लौट चले।.....मगर वह रुका, यदि लौट गया तो काम कैसे होगा ? जैसे-तैसे उसने साहस बटोरा और चपरासी से स्लिप भिजवा दी।

मनीष ने स्लिप देखी...चेहरे पर मुस्कान फैल गयी और उसने चपरासी को कहा "इनको अन्दर भेज दो।"

"जी सर !" कहकर चपरासी चला गया।

"आइए ! दिनेश बाबू कैसे है ?"

"जी ! यह एक काम था...यदि आपकी कृपा. ।"

"अरे ! अरे !! यह आप क्या कह रहे है ? मेरी कृपा. फुटपाथिये लोग आप जैसे महान् 'लोगो' पर कैसी कृपा कर सकते है ?"

'महान्' शब्द पर जोर देकर कहना दिनेश के सीने मे कटार की तरह घुस गया. ..कटकर रह गया था.. क्या उत्तर दे...ग्लानि उसे सिर तक उठाने नही दे रही थी।

"वो मैने आपके लिए नहीं कहा था . . वो तो उन कुछ लोगो ..।"

" मै यदि आज कुलपति हूँ तो क्या आप समझते हैं यो ही हूँ....मिस्टर दिनेश मेरी समझदारी शायद आपसे कम नही है ..आप मुगालते मे क्यो जीते है....आपको किसने अधिकार दिया कि आप किसी पर भी फुटपाथिए या इस प्रकार की कोई टिप्पणी करे...आप स्वय क्या है ? इसपर भी कभी विचार किया है.. सम्भव है, आपको फुटपाथिया कहने मे भी लोग लज्जा का अनुभव करे.. आप स्वय इमीटेशन तो नही है. .. पहले इसकी परख कर लीजिए तब आइएगा मेरे पास. . अभी आप जा सकते है।"

वह मनीष के कार्यालय से निकल लड़खड़ाते पैरो से लौटने लगा। ●

बुलन्दी

"मैडम ।" सर ने आपको बुलाया है ।" यह प्रबधक का चपरासी था जो इतना कह कर लौट गया । मै जो कार्य कर रही थी उसे पूरा किया और तब उठी और प्रबन्धक क चैम्बर की ओर बढ गयी । इससे पूर्व कि मै चैम्बर मे प्रवेश करती चपरासी ने धूप मे अपने किसी मित्र के साथ बैठे प्रबन्धक की ओर सकेत किया कि उधर बैठे है ।

इस प्रकार धूप में मित्र के साथ बैठकर गप्पे ठोकना और उस पर मुझे बुलाना मुझे अपमानजनक लगा । फिर भी मैं उस ओर बढ़ गयी और वहाँ पहुँचकर मैने पूछा, "आपने मुझे बुलवाया ?"

"हाँ ! क्यो मै बुल्वा नही सकता ?"

"कहिए ।"

"क्या आप मेरे साथ दिल्ली चलना चाहेगी ?"

"क्यो ?"

"मेरे साथ कार्यालय मे अनेक लोग जा रहे है सरकारी काम भी होगा और घूमना भी हो जाएगा ।"

"सॉरी सर ! मेरा बेटा अभी बहुत छोटा है. सर्दी का सीजन है... अतः मेरा जाना सभव नही है . फिर यदि आप मुझे ले ही जाना चाहते थे तो मुझे सरकारी स्तर से ही ले जाते यो जाने का क्या अर्थ ?"

"देखिए ! यह आपके बॉस है.. इन्हे प्रश्न रखिएगा तो आपको लाभ-ही-लाभ होगा . आपका भविष्य बन जायेगा.. जब ये साथ होगे तो आपका खर्च बचत भी होगा ।" यह प्रबन्ध के मित्र थे ।

उनके मित्र का इस प्रकार बीच मे बोलना मुझे कतई अच्छा नही लगा, मैने कहा, "आपको हमारे कार्यालय मामलो मे नही बोलना चाहिए... दूसरी बात यदि मुझे खश करके ही अपना भविष्य बनाना होगा तो फिर इन्हे ही क्यो मै क्षेत्रिय प्रबन्ध को ही खुश क्यो न करूँगी जो इनका भविष्य भी बना बिगड़ सकते हैं ।" मुझे अपने श्रम एव योग्यता पर पूरा भरोसा है.. वही मेरा भविष्य बनाएगा ।"

"आप नाराज हो गयी .. मेरा उद्देश्य यह नही था ।" लज्जित होते हुए मित्र ने कहा ।

"और सुनिए मि०... आपका जो भी नाम हो.. सारी कामकाजी महिलाएँ दुस्चरित्र नही होती... मुझे अपने परिवार से बहुत लगाव है ।" ये शब्द मैने प्रबन्धक की ओर देखते हुए थोड़ा चबा-चबाकर कहे और प्रबन्धक की बात सुने बिना मै लौअ आयी । ●

स्थिति

यह जैसे ही मेरे कार्यालय मे आए तो मैने औपचारिकता का निर्वाह करते हुए सामने पडी कुर्सी की ओर सकेत करते हुए कहा, ''श्रीमान् ! बैठ जाइए ।''

वह बैठ गए. . वह कुछ बोले नही और कुछ क्षणोपरान्त बोले, ''यदि संभव हो तो एक गिलास पानी. ।''

वह अपना वाक्य पूरा कर पाते, इससे पूर्व मैने पूछा, ''श्रीमान् ! आप चाय पीना पसद करेगे ?''

''नही भई ! सुगर हो जाने के कारण विगत कई वर्षो से छोड़ दी है ।''

''आप कैसे है ?''

''कैसे दिख रहा हूँ ?''

''इसीलिए तो पूछा है.. आप स्वस्थ प्रतीत नहीं हो रहे है ।''

''देखिए ! चिन्ता जैसी कोई बात नही है, एक दो ढ़ाई-तीन वर्षो में भेंट हो रही है दूसरा अब उम्र भी तो हुयी । पचहतर का हो रहा हूँ । और कहिए इधर कोई पुस्तक आयी ।

''हाँ ! अँधेरे के विरूद्ध' लघुकथा-सग्रह आया है न..।''

मै अपनी कुर्सी से उठी और आलमारी मे देखने लगी शायद कोई एकाध प्रति पड़ी मिल जाए. देखा ता एक प्रति दिखायी पड़ गयी, मैने निकालकर उन्हे भेटकर दी । धन्यवाद दते हुए बोले, ''मै चलता हूँ... गर्मी काफी है , आपके यहाँ तो बजली भी नही आ रही है ।''

''बॉस से भी मिल लेते...।''

'' उनसे मिलकर ही तो आपके पास आया हूँ ।''

वह उठे और बाहर की ओर चल दिए.. मैने दरवाजे से उन्हे सी ऑफ किया... मैने देखा वह घुटनों में दर्द के कारण कुछ लंगड़ाते-से जा रहे थे. मै भावुक हो उठी, सोचने लगी, काश ! मेरे वश मे होता तो ऐसे वृद्ध हिन्दी-सेवी को कार्यालय की कार से ही भिजवा देती.. मगर यहाँ तो सरकारी कार को बॉस के पारिवारिकि कार्यो से फुर्सत हो तब न ।

और मै पुनः अपनी कुर्सी पर आ गयी और कार्यालय कार्यो मे अपने को व्यस्त करने की चेष्टा करने लगी । ●

बोध

वह छोटा-मोटा व्यवसाय करता था । साहित्य में भी दखल रखता था । उसने मुझसे कहा ''तुम अपने बॉस से मुझे मिलवा दो. यदि वह थोड़ा सा स्टेशनरी सप्लाई का ऑर्डर मुझे दे दिया करे, तो बच्चों का पेट-पालने मे मुझे सुविधा होगी ।''

मैने कहा, ''ठीक है चलो ।'' और मै उसे बॉस के चैम्बर मे ले गयी । मैने उसका परिचय करवा दिया और उसे सहयोग करने हेतु सिफारिश भी कर दी । मै अपने चेम्बर मे लौट आयी, वह बॉस से बातचीत करने लगा ।

बॉस ने गर्दन अकड़ाकर कहा, ''आपको अपने परिधान पर भी ध्यान देना चाहिए, उससे प्रभाव बढ़ जाता है ।''

''आपकी बात सही हो सकती है, किन्तु जिस बाप की दो-दो बेटियाँ ब्याहने को हो, वह अपने विषय मे कैसे सोच सकता है ?''

इतना सुनते ही बॉस को लगा कि उसने उसे भरे बाजार मे नगा कर दिया है, उसे भी दो बेटियाँ थी, जो शादी योग्य है । बॉस ने उसे ऊपर से नीचे तक देखा । फिर बोला, ''आप कल आइए... मुझसे जो भी सहयोग बन सकेगा अवश्य दूँगा.. अबतक बॉस की गर्दन की अकड़ ढीली हो चुकी थी.. अब वह बॉस कम और लड़कियो का बाप ज्यादा लगने लगा था । ●

सार्थक दिशा

मैने अपने चपरासी को कार्यालय के कार्य से ही एक व्यक्ति के यहाँ भेजा कि जाकर उनसे अमुक-अमुक कागज ले आओ। यहाँ से आते ही वह मुझ पर उखड़ गया, "आप मुझे कहाँ-कहाँ भेज देती है ?. वह कहते है हम कोई कागज-वागज नही देगे.. हमारे पास अभी फुर्सत नही हैं।"

"अरे भाई !.. तुम बात तो कायदे से करो .इस प्रकार शोर क्यो कर रहे हो ?"

"इतनी दूर पैदल जाना..आना, हलकान तो हम होते है..आपको तो बस कुर्सी पर बैठकर मुँह खोलना है..।"

"देखो ! तुम जरूरत से ज्यादा जुबान खोलने लगे हो मुझे उन्होने सुबह फोन पर कहा था कि दिन मे किसी को भेजकर मँगवा लीजिएगा.. तो मैने भेजा.. यह कोई मेरा निजी काम तो था नही. सरकारी काम है करना हो तो करो न मन हो, तो मत करो... मै उसी प्रकार लिखकर आगे बढ़ा दूँगी..फिर तुम जाना या बॉस ।"

"ठीक है। ठीक है !! आपको जो लिखना-पढ़ना हो... लिख दीजिएगा.. बॉस मेरा क्या कर लेगे ? आपको पता नही है... मेरा भतीजा मत्री जी का पी० ए० है... हम कौनो हवा मे ऐसे ही नही झूलते हैं ।" चपरासी हाथ पटकते हुए कार्यालय से बाहर हो गया।

मै सोचने लगी... यदि ऐसा ही चलेगा तो कार्यालय का क्या होगा ?

"कार्यालय का क्या होगा ? यह वाक्य बेसाख्ता स्वर का रूप धारण करके फिसल गया था। मेरे समक्ष बैठे एक पत्रकार ने सुन लिया था। वह कहने लगा, "आप कार्यालय की चिन्ता करती हैं.. यहाँ देश की किसी को कोई चिन्ता नही है। आप भी... नौकरी करती है, तो व्यवस्था और प्रशासन का अंग बन जाइए अन्यथा त्याग-पत्र देकर कोई अन्य काम देखिए ।" पत्रकार महोदय ने आक्रोशमय स्वर मे मुझे अपनी नैतिकता बचाने हेतु जाने-अनजाने एक दिशा दे दी थी.. और मै अपनी नैतिकता को बचाए रखने हेतु भविष्य के विषय मे सोचने लगी। ●

टूटते रिश्ते

एलबम देखते-देखते एक जगह नजर टिक गयी। एक फोटो मे वह मुझसे राखी बन्धवा रहा था। फोटो देखकर मन बीते दिनो मे चला गया। जब वह शहर में नया-नया आया था। मुझसे उसने दीदी-अनुज का सबध कायम किया था। मै अपने को सचमुच उसकी दीदी समझने लगी। वह भावना के स्तर पर मुझसे जुड गया था। वह जिस सहयोग की अपेक्षा करता, मै अपना दायित्व समझकर पूरा करती।

मुझे स्मरण हो आया, जब व्याख्याता हेतु उसका साक्षात्कार होने वाला था, उसने मुझसे कहा, "दीदी! उस बोर्ड मे सभी आपके परिचित है। मैने प्रयास किया और वह एक अच्छे कॉलेज मे व्याख्याता हो गया।"

मेरे पति का निधन हुआ, वह नही आया। मुझे पुत्र उत्पन्न हुआ, वह नहीं आया। मुझे उसके नही आने का दुःख तो हुआ, मगर उसे हृदय से निकाल न सकी। भाई जो था।

पुरानी स्मृतियॉ मुझे रुला गयी। तभी डाकिया डाक दरवाजे मे डाल गया। मै सहज भाव से उठी और पत्रों को देखने लगी। एक पत्र पर ध्यान गया—आँसू प्रसन्नता मे बदल गये कि चलो देर आये दुरुस्त आये। इतने दिनो बाद ही सही, भाई को बहन की याद तो आयी। झटपट लिफाफा खोलकर पढ़ने लगी। पढ़ते ही क्रोध, दुःख दुगुना हो गया। उसने लिखा था, "तुम मुझसे उम्र में बडी हो तो क्या हुआ ? तुम विधवा हो, एक पुत्र की माँ हो फिर भी मै तुमसे शादी करना चाहता हूँ..विश्वास है तुम 'न' नही कहोगी।" इसके आगे पत्र पढ नही सकी।...वाह री दुनिया! तू नित्यप्रति फैलने की बजाय सिकुडती जा रही है .मेरी दृष्टि पुनः राखी वाले चित्र पर चली गयी।

मैंने ऑसू पोछे और एलबम से उस फोटो को निकाल एक लिफाफे मे बन्दकर टिकट लगवाकर भूतपूर्व भाई को पोस्ट करवा दिया।

ऑसू सूख चुके थे। मन से निकला, "ईश्वर तुम्हें सद्बुद्धि दे।" ●

चरित्रहीन

मै अपने कार्यालय से अपने निवास की ओर जा रही थी कि कार्यालय के मुख्य-द्वार के एक छोर पर एक युवक एक युवती से कुछ कह रहा था । किन्तु मेरे कानो म ये शब्द पड़े, "तुम क्या बात करती हो, मैं तो तुम्हारे लिए जान तक दे सकता हूँ ।"

उत्तर मे युवती ने कहा, "कोई किसी के लिए तो क्या, अपने लिए भी जान नही देता फिर तुम जान दे भी दो, उससे मुझे क्या लाभ ? हाँ ! तुम यह बताओ कि तुम मेर एकाउण्ट मे कितना धन जमा कर सकते हो ? अपना घर मेरे नाम रजिस्ट्री करा सकते हो ? अपनी कार मेरे नाम करा सकते हो ?... बोलो ।"

"ये तुम कह रही हो ? तुम मुझसे ज्यादा ये सब ।"

"हाँ ! तुम्हारी जान से मुझे क्या लाभ... कर सकते हो तो वह करो जो मैंने कहा. अन्यथा मजनूँ की औलाद. अपनी माँ-बहिन की गोद मे मुँह छिपाकर सो जाओ. ।" इतना कह कर वह झटक कर एक ओर हो गयी ।

यह सुनकर मुझे स्मरण हो आया कि उस दिन मेरे बॉस के कार्यालय मे बैठे उनके मजनूँ टाईप मित्र, जो उम्र के तीसरे पडाव के चरम पर थे, मेरे बॉस से मुखातिब होकर मेरे लिए बोले, "मै तो इनके लिए जान भी दे सकता हूँ ।"

मैने हिकारत की दृष्टि से देखते हुए कहा, "अपनी जान को सभालकर रखिए, आपकी बीवी के काम आएगी, जो अपने साथ आप जैसे बेरोजगार पति का भी पेट पाल रही है ।" इतना कहकर मैं अपने चैम्बर में लौट आयी । ●

दकियानूसी

सर्दियो की धूप स्वर्ग-सा आनद देती है । मै अपने पाँच माह के पुत्र के साथ धूप मे खेल रही थी । आज न जाने क्यो वह मुझे बहुत ही प्यारा लग रहा था । हालाँकि कार्यालय जाने मे देर भी हो रही थी, फिर भी मै उसे छोड़ नही पा रही थी । मेरे अनुज ने कहा, ''दीदी ! घड़ी देखी है ?''

''क्या बज रहा है ?''

''दस-चालीस हो रहे ह ।''

''अरे ! दस मिनट तो अभी लेट हो चुकी हूँ- मैने पुत्र को दाई के हवाले किया और तैयार होन हेतु जैसे ही बढ़ी, कि देखा मेरी साड़ी का पल्लू पुत्र के हाथ म है . बढते कदम सहसा रुक गए और मैने झट् से उसे पुनः गोद मे ले लिया और अपने सीन से चिपका लिया और बेतहाशा चूमने लगी ।

अनुज का स्वर पुनः सुनायी पडा, ''दीदी ! दस पचपन हो रहे हैं ।''

सोचा आज की सी.एल. ले लेती हूँ मगर अगले ही क्षण ध्यान आया कि मैने तो ग्यारह बजे प्रेस वाले को बुलवाया हुआ है.. वह पत्रिका के प्रूफ लेकर आएगा । अक निकलने मे पहले ही पर्याप्त विलम्ब हो चुका है । मै जितनी जल्दी चाहती हूँ कि समय पर अक निकल जाए मगर सरकारी पत्रिकाओ का क्या कहूँ...

अभी मै उसी उधडबुन मे डूब-उभर रही थी कि मुझे स्मरण हो आया कि पुत्र की जन्मकुडली बनाते समय पडित ने बताया था कि बालक काफी क्रोधी होगा और माता का विरोधी भी हो सकता है... ऐसा ध्यान मे आते ही मुझे अपना ही पुत्र एकाएक प्रतिनायक-सा लगने लगा और मै झटके से उठी और पुनः उसे दाई को सौप कर मै कार्यालय जाने हेतु तैयार होने लगी । वह रोने लगा.. किन्तु मै उसकी ओर ध्यान दिए बिना ही कार्यालय हेतु चल दी । ●

पत्राचार

कार्यालय से लौटकर मै घर मे घुसी ही थी कि भैया चिल्लाये, ''आजकल क्या-क्या हो रहा है ?''

मै कुछ समझ नही सकी, ''साफ-साफ कहिए न कि बात क्या है ?''

''यह पत्र देखा है ?''

''मे तो अभी आ ही रहा हूँ...पत्र आपके हाथ मे है.. मुझे क्या पता है..पत्र किसका है क्या लिखा है ?''

''लो देखो...।''

मैने पत्र हाथ मे लिया और पढ़ने लगी. पत्र किसी पाठक का था. जिसने 'इडिया टुडे' मे प्रकाशित मेरी कहानी की प्रशसा के पुल बाँधते हुए प्रेमाभिव्यक्ति की थी । पत्र पढकर मैने टेबुल पर रख दिया और कहा, ''भैया ! इसमे ऐसा क्या है कि आप इतना चिल्ला रहे है ?''

''सुना पिताजी ! कोई इसे प्रेम-पत्र लिखे और मैं..'' बीच मे ही बात काटते हुए मैने कहा, ''इसमें मेरा दोष ? यदि आप को बुरा लगा है जिसने पत्र लिखा है उसे कहे या लिखे ।''

पिताजी ने जब मेरी बात सुनी तो उन्होने भैया से कहा, ''आनन्द ! मुक्ता ठीक ही तो कह रही है इसमे इसका क्या दोष ?'' भैया निरुत्तर खड़े थे । मैने उनकी स्थिति को भाँपते हुए कहा, '' भैया ! अगर मुझे यही सब करना होता तो डाक कार्यालय के पते पर मगवाती । यदि कभी किसी से प्रेम हुआ तो पूरे परिवार की नजर मे पत्राचार करूँगी. इसमे डरने की क्या बात है ?''

''भैया ! चुप रहे, कुछ नही बोले ! पिता जी ने हँसते हुए कहा, ''यह लडका है इसकी बात और है और तू ठहरी लड़की ...।''

''पिता जी ! वह जमाना लद गया जब लड़का या लड़की मे भेद हुआ करता था आज तो दोनों बराबर है । लड़कियॉ किसी भी मामले मे लड़को से पीछे नही है । भैया कमाते है मै भी कमाती हूँ...यदि उन्हे प्यार का अधिकार है, तो मुझे कैसे रोक सकते है. यद्यपि फिलहाल ऐसा कुछ है नही ।..हो भी जाय तो मै बालिग हूँ, फिर यह वर्ष तो नारी सशक्तीकरण का है ।''

''बेटा ! तू जरूरत से ज्यादा समझदार हो गयी है ।'' मुस्कुराते हुए पिताजी ने कहा और भैया के पीछे-पीछे कमरे मे चले गये । ●

स्वाभाविक समाधान

समझ में नही आता कि यह रोज मुझे क्या हो जाता है । जब भी कोई काम करने को सोचती हूँ या तो आलस्य आ जाता है या ऐसा लगता है कि तबियत कुछ ठीक-सी नहीं है । मै अपनी स्थिति से परेशान चिन्ताओ मे उलझ-सुलझ रही थी कि मुझे ध्यान आया कि मैंने कभी विद्यार्थी-जीवन मे किसी पत्रिका मे पढा था कि अक्सर कामकाजी अविवाहित नारियाँ घमडी, जिद्दी और सामन्ती प्रवृत्ति की हो जाती हैं । परिणामतः उनके काम-काज की आदत छूट जाती है । मुझे लगा शायद यह सही हो ।

मेरा ध्यान अपनी ही एक पुरानी दोस्त पर चला गया । उसने भी अब तक विवाह नही किया, आज उसकी भी यही स्थिति है । आजकल वो एक नर्सिग होम में भर्ती है । अभी मै यह सोच ही रही थी कि मुझे एक मुँह बोली भाभी का ध्यान हो आया, जिसकी शादी उसके प्रेमी से न करके एक स्वजातीय पुरुष से करवा दी गयी थी । परिणाम हुआ तलाक । फिर भैया से शादी हुयी । अब तो तीन बच्चे है । घमड, जिद्द अन्य किसी ने तो नही, उसके बच्चो ने अवश्य छुड़वा दिये ।

आज वह नौकरी भी करती है और पूरी निष्ठा से घर भी चलाती है । इतना ध्यान आते ही मेरा ध्यान अपने नवजात शिशु पर चला गया..मुझे लगा कि इसकी बढ़ती उम्र के साथ मेरी भी जडता टूटेगी ही । ●

अपनी शर्त पर

वह अकेले बैठा सोच रहा था कि कैसे अपनी कहानी पर महत्त्वाकांक्षी फिल्म बनाए । वह परेशान हो उठा, हाथ से सिगरेट का टोटा फेका और दूसरी सिगरेट जलाकर तकिये के सहारे लेट गया।

अभी वह ऊहापोह की स्थिति मे था ही कि दरवाजे पर दस्तक हुयी । वह झुझला उठा उसके मुँह से कुछ निकलने ही वाला था कि उसने शब्दों को भीतर ही दबा लिया और उठकर दरवाजा खोलने चल दिया ।

"अरे आनन्द तुम ! भई, तुम तो ईद का चॉद हो गए हो ।"

"वो सब तो ठीक है, मगर तुमने यह क्या धुएँ से घर भर रखा है अरे हॉ ! तुम तो अपनी कहानी पर फिल्म बनाने वाले थे क्या हुआ तुम्हारे फाइनेसर का ?"

"कहानी सुनकर कहने लगा कि कहानी तो अच्छी है..फिल्म भी अच्छी बनेगी...मगर फिल्म चलेगी नही ।"

मैने पूछा, "क्यो ?"

कहने लगा, "उसमे वो सब तो है ही नहीं, जो लोग देखना चाहते है.. कुछ वैसी कहानी पर फिल्म बनाने को तैयार हूँ, वरना.....।"

मुझे बहुत गुस्सा आया. मगर क्या करता, मन मसोम कर बैठ गया. ..।

"अरे ! तुम मोहन भाई जरीवाला से बात क्यो नही करत ?"

"नही यार ! सुना है अण्डरवर्ल्ड से उसके गहरे सम्बन्ध है.. कहीं मेरी फिल्म की दशा भी 'चोरी-चोरी चुपके-चुपके' जैसी न हो जाए.. इससे बेहतर तो फिल्म भले ही न बने मगर जब बने, तो साफ-सुथरी ...मरी कहानी एव कल्पना के अनुरूप ही ।"

"अबे कलाकार !... विना समझौता के तो घर भी नही चल सकता तुम फिल्म और फाइनेन्सर की क्या बात करते हो ?"

"इसीलिए मैंने शादी नही की. ..मै अपने आदर्शो से समझौता नही करूँगा . ..भल ही मुझे कितनी ही लम्बी प्रतीक्षा क्यो न करनी पड़े ।"

"तुम और तुम्हारे आदर्श जाये भाड मे... मै तो चला ।" आनन्द चला गया और वह पुनः अपने विचारों मे खो गया । ●

यादें

रह-रहकर आज उनकी स्मृति हो आ रही थी । शायद इसी कारण मेरी दृष्टि बार-वार उनके चित्र से जा चिपकती । उनका चित्र ऐसा लगता जैसे कुछ फुसफसा रहा हो... तुम तो स्वय विदुषी हो... इस ससार मे मब मिथ्या है । किसी मे भी कुछ सच्चाई नही है..फिर तुम्हारी यह स्थिति क्यों ? तुम्हें पूरी हिम्मत एव साहस से अपने दायित्वो का निर्वाह करना है ।''

अभी मै अपने मे खोयी ही हुई ी कि ललिता आ गयी . मेरी बडी प्रिय दोस्त है गर आज न जाने क्यो मुझे लगा कि यह लौट जाए तो अच्छा है । मगर वह न तो गयी, और चाहते हुए भी मै औपचारिकतावश उसकी अपेक्षा भी नही कर सकी ।

मेरी दृष्टि पुनः उनके चित्र पर टिक गयी । मुझे प्रतीत हुआ कि वह कह रहे हो कि जीवन को जीवन की तरह यानी उसे जीवत बनाकर जीना चाहिए । कोरी भावुकता व्यक्ति को स्वर्थ की ओर ले जाती है और दायित्व च्युतकर देती है ।

ललित ने टोका, ''क्या बात है मीनू ! कहो ता मे चली जाऊँ ?''

''अरे नही ! क्या बात है जल्दी मे हो क्या ?''

''नही भई ! इसम जल्दी का क्या सवाल है मै तुम्हारे पास बैठी हूँ और तुम पाषाण बनी बैठी हो ।''

मुझ सहसा अपना भूल का एहसास हुआ और मं चाय बनाने चल पड़ी ।

उसने टोका ''महारानी ! अब किधर...?''

''चाय का पानी रख आॅऊ तो फिर गपशप करते है ।'' वह मेरी तरह देखकर मुस्कुरा दी और उत्तर में मैंने भी हल्की-सी स्माइल पास कर दी । ●

रूढ़ियाँ

दर्पण मे आज जब मैने अपना चेहरा देखा, तो अपनी सूनी माग देखकर आँखो में ऑसू आ गये । उसके पश्चात् मै अपने आपको सवार न सकी और व्यतीत हो गए अपने विवाहित जीवन के विषय मे सोचन लगी । मे कितनी अकेली हो गयी हूँ....वह थे तो लगता था मै प्रत्येक दृष्टिकोण से सुरक्षित हूँ ..आज मुझे न जाने क्यो असुरक्षा का एहसास सताने लगा है । मुझे ऐसा लगता है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति की नजर मुझे ही देख रही है ।

दूसर ही क्षण फिर मन सोचता है कि उन्होने मुझे जीवन मे दिया ही क्या था, सिवा किच-किच के । अगले ही क्षण फिर मुझे लगता है कि उन स्थितियो मे कुछ दोष मेरा भी था... मुझे पति की मानसिकता को भी समझना चाहिए था, जो शायद....।

अभी मै इतना ही सोच पायी थी कि रिश्ते में एक के यहाँ से शादी हेतु निमत्रण आया है । वह कहने लगे, ''आप तो अब....खेर । परिवार में किसी को अवश्य ही भेज दीजिएगा ।'' उनका यह वाक्य मुझे भीतर तक साल गया कि मैने क्या विधवा होना चाहा था ? आखिर इसमे मेरा दोष कहाँ है ?'' मेरा मन पुनः भर आया । ●

कद

एक विद्यालय में सरस्वती-पूजा की तैयारियाँ जोर-शोर से चल रही थी। प्राचार्य ने सत्येन्द्र की प्रतिभा एवं कर्मठता को देखते हुए समारोह का संयोजक नियुक्त कर दिया। सत्येन्द्र अपने दायित्व को पूर्ण करने में लग गया। सत्येन्द्र की सक्रियता को देखते हुए उसके कुछ मित्र उससे ईर्ष्या करने लगे। आपस में यह स्थिति देख सत्येन्द्र बहुत चिन्तित हुआ। उसने विक्षुब्ध मित्रों से मिलकर निर्णय लिया और उनके पास जाकर कहने लगा, "आप लोग मेरे सहकर्मी है, फिर यह असहयोगभाव क्यो ?"

मोहन उत्तेजित हो गया और बोला, "संयोजक तुम हो..तुम जानो तुम्हे क्या और कैसे करना है ? इससे हमें क्या लेना-देना ?"

"नही, मोहन। तुम गलत समझ रहे हो. मैं संयोजक रहूँ या न रहूँ। काम तो विद्यालय का है, विद्यालय हम सबका है सभी के सहयोग से ही यह कार्य हो सकता है।"

"हम नही जानते. तुम जानो तुम्हारा काम जाने," सभी मित्र एक साथ बोल पड़े।

सत्येन्द्र कागज पर कुछ लिखकर प्राचार्य की ओर जाने लगा, तो मोहन ने आवाज दी, "क्या हमारी शिकायत करने जा रहे हो ?"

"नहीं। तुम सभी मित्र हो.. अपने मित्रो की भी कही शिकायत की जाती है ?"

"तो फिर यह कागज कैसा है ?"

"संयोजक पद से त्याग-पत्र देकर तुम्हे संयोजक बनाने की सिफारिश की है।"

"तो क्या तुम इस समारोह में भाग नहीं लोगे ?" "क्यों नहीं..मैं उसी जोश-खरोश के साथ समारोह सफल बनाने हेतु पूरी निष्ठा से सहयोग करूँगा। प्रश्न विद्यालय की प्रतिष्ठा का है।"

मोहन एवं अन्य मित्र चुपचाप खड़े थे ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे वे बौने हो गए हो और सत्येन्द्र का कद एकाएक काफी ऊँचा हो गया हो। ●

नपुसंक

"क्या बात है माँ ! आज तू बहुत परेशान मालूम होती है. क्या बात है ?" मैंने घर मे प्रवेश करते हुए माँ को उदास देखकर पूछा ।

"कुछ नही...बस यो ही...।"

"फिर भी कोई बात तो होगी...।"

"अरे ! वो तुम्हारी दोस्त निशा है न. ।"

मैने बीच मे घबराकर टोका, "क्या हुआ निशा को.. क्या उसके पति ने उसे आज फिर पीटा ?"

"पीटा तो नही, किन्तु पिट गया ।"

"निशा जैसे ही कार्यालय जाने लगी पति ने रोका. . आज रविवार है. आज कार्यालय नही जाना है... मगर उसने कहा कि आज स्थापना-दिवस है. .मुझे जाना ही होगा. . कार्यालय का आदेश है... सभी आएँगे . .।"

"फिर क्या हुआ ?"

बस फिर क्या था... निशा ने अपना पर्स उठाया और चल पडी कार्यालय को । अभी घर से कुछ ही दूर तक गयी होगी कि पति ने दौडकर उसके रिक्शा मे बैठने से पूर्व ही निशा के बाल पकड़ लिए और लगा पीटने.. बस फिर क्या था. आज निशा के धैर्य का बाँध टूट गया था, वह भी दुर्गा की तरह गर्जी और उसने अपने पति को ऐसा धक्का दिया कि धूल चाटने लगा और उसने उसकी धोती खोल दी... आज उसका क्रोध देखने योग्य था । वह क्रोध मे चीख रही थी.. " नामर्द, हिजड़े. तुम्हारी यह मजाल. . बीच-बाजार मे तुम नारी का अपमान करोगे... ।" वह बोलते-बोलते हाँफने लगी थी ।

बाजार मे अच्छी-खासी भीड़ लग गयी थी । सभी लोग उसके पति पर थू-थू करने लगे थे . वह अप्रत्याशित घटना से स्तब्ध अभी भी जमीन पर पडा था और निशा ने एक मिनट मे अपने को सयत किया और पुनः रिक्शा की ओर बढ़ गयी ।

मेरे मुँह से अकस्मात् ही फूट पड़ा, "ये हुयी न कुछ बात ।" ●

कच्चे रिश्ते

नीतेश मुझे दीदी कहता था । राखी भैया-दूज सब कराता था । मैने भी कभी उसे गैर नही समझा । वह बराबर एक फाइनेन्स कम्पनी बनाने की चर्चा करता । पहले तो इसमे मैने कोई दिलचस्पी नही दिखायी, मगर उसके बार-बार आग्रह एव स्नेह के वशीभूत होकर मैने कहा, "नीतेश ! मै तो सरकारी नौकर हूँ.. अतः मै तो इसमे किसी प्रकार की प्रत्यक्ष भूमिका का निर्वाह नही कर सकती...फिर भी जो बन पड़ेगा परोक्ष रूप से सहयोग करूँगी।"

मेरी बात से वह आश्वस्त हुआ, कुछ क्षणोपरान्त ही बोला, "दीदी ! अभिनन्दन भी तो बेकार है...क्यो नही वह अपने क्षेत्र मे जाकर ऑफिस खोल ले और वहाँ के लोगो को सदस्य बनाये, उनको भी लाभ होगा और सदस्यो को तीन ही सालो मे दुगुनी रकम मिलेगी जबकि बैक छः वर्ष मे डबल करता है ।" बात मुझे भी जँची... इससे पूर्व कि मै अभिनन्दन के विषय मे कुछ निर्णय लती, मेरी दृष्टि अखबार के एक समाचार पर पड़ गयी कि जी० वी० जी० फाइनेंस कम्पनी रातो-रात करोड़ो रुपए लेकर फरार । इतना सुनते ही मुझे सत्येन स्मरण हो आया, जिसने मुझसे इस कम्पनी के बंद होने के विषय मे कहा था । उसने बताया था कि उसका एक मित्र जो पजाब नैशनल बैंक में काम करता है, ने बताया था कि जी० वी० जी० का एकाउण्ट हमारे यहाँ है...यह कम्पनी किसी भी क्षण डूब सकती है । इतना ही नही, उसने इस प्रकार की अन्य अनेक फाइनेन्स कम्पनियो के विषय मे बताया था कि शनै॰ शनैः ये सारी कम्पनियाँ डूबने वाली हैं और उसने डूबने के सार्थक एव व्यवहारिक कारणो पर भी प्रकाश डाला था, चूँकि वह एम० कॉम० है । अतः मै कन्फ्यूज हो गयी ।

मेरी नजर नीतेश पर पड़ी- वह अभिनन्दन को सब्ज बाग दिखाने में व्यस्त था । मुझसे नजर मिलते ही उसने कहा, "दीदी ! अभिनन्दन को घर कब भेज रही हो ?"

मैने कहा, "नीतेश । यह समाचार पढ़ो ।" मैंने अन्य फाइनेंस कम्पनियो के विषय मे भी सत्येन से मिली जानकारी से अवगत करा दिया । इतना सुनते ही नीतेश के तेवर बदल गए,"तुम्हे मुझसे ज्यादा सत्येन पर भरोसा है ?"

"हाँ ! उसको मुझसे कोई स्वार्थ नही है और तुम्हे है...खैर ।"

मेरी पूरी बात सुने बिना ही वह यह कहते हुए चला गया, "आज से तुम्हारा मेरा सबध खत्म.. " ●

जुआ

दिनेश का चेहरा आज जितने उत्साह से भरा हुआ था कि उतना उत्साह एवं उसकी प्रसन्नता इससे पूर्व कभी नही देखी । मैने कहा, ''दिनेश ! क्या बात है.. बड़े खुश दिखायी दे रहे हो..।''

''अरे ! खुशी की ही तो बात है...।''

''जल्दी बताओ...।''

''आज लॉटरी का रिजल्ट निकल आया है...।''

''कितने की निकली है...?''

''पहला पुरस्कार मेरा ही समझो... अब ज्यादा हुज्जत मत करो और फटाफट तैयार हो जाओ ।''

''पहला पुरस्कार समझो...तैयार हो जाऊँ... कुछ समझा नहीं...।''

''अबे.. तैयार होकर चलोगे... तभी न रिजल्ट देखने चलेंगे.. ।''

''तो मतलब, हुजूर बिना देखे ही इतना...खैर...!'' मैं तैयार होने लगा । चलना कहाँ है ।

''अरे ! किसी भी लॉटरी वाले के यहाँ देख लेते हैं... वे लोग सब अखबार रखते है...।''

''वह तो हमलोग भी अखबार में देख सकते है...।''

''लॉटरी वाले के यहाँ दिखाएँगे, तो वह अपना कमीशन काटकर तुरन्त पैसे भी देते हैं...तुम बात को समझते नहीं हो..।''

मुझे मित्र पर रहम आने लगा । किस तरह हवाई झूलो में झूल रहा है... मेरे मन में आया कि चलो इसे थोड़ा और उत्साहित कर दिया जाए । मैंने कहा, ''दिनेश ! ऐसा क्यों न करें कि इस खुशी में पहले किसी अच्छे रेस्तरा में कुछ मिठाई-विठाई हो जाय... ताकि मीठा खाने के बाद सब शुभ-ही-शुभ हो ।''

''यह कौन-सी बड़ी बात है... चलो !''

उसने बिल पेमेन्ट किया और हमलोग नगर के बड़े एजेण्ट के यहाँ पहुँचे । दिनेश ने सभालकर रखे गए लॉटरी टिकट को इस उत्साह एव प्रफुल्लता से निकाला, जैसे पहला प्राइज उसी को मिलना है... । लॉटरी वाले ने टिकट हाथ मे लिया और एक मिनट में कहा, ''नहीं ! आपको कोई प्राइज नहीं आया ।''

''क्या बात करते हो ! तुम जरा ठीक से देखो.. । ऐ संदीप ! तुम खुद देखो ये लोग तो लापरवाह होते हैं...इन्हे किसी से क्या.... ।''

मैं तो समझ ही गया था.. मगर मित्र का दिल रखने के लिए मैं गंभीर मुद्रा बनाते हुए रिजल्ट के एक-एक अक्षर को आँख गड़ा-गड़ाकर देखने लगा । अन्त मे मैने अपने चेहरे पर निराशा-भाव लाते हुए कहा, ''दिनेश यार ! आई एम सॉरी ।'' ●

निर्लज्ज

वह आया और चुपचाप बैठ गया। मुझे उसके हाव-भाव से यह एहसास हुआ कि वह मुझसे शायद कुछ कहना चाहता है और अन्य लोगो की उपस्थिति के कारण वह चुप है। धीरे-धीरे प्रायः सभी लोग अपनी-अपनी बात कह-सुनकर चले गए। किन्तु वह यथावत् बैठा रहा। मै अपने कार्य मे लग गयी।

"मै कल देविका जी से मिला था।"

"हा।" मैंने गभीरता से नही लिया।

"उन्हे 'पत्रकारिता रत्न' से सम्मानित किया गया है..मै उन्हे बधाई देने गया था।"

"यह तो एक जरूरी औपचारिकता है, किसी भी साहित्यकार को अपने साथी साहित्यकार को ऐसे अवसरों पर बधाई देनी ही चाहिए।"

"बात इतनी ही नही है न ? आपको याद है कि एक बार मैने उनसे अपनी पुस्तक की भूमिका लिखने हेतु कहा था, उन्होने कहा था कि अभी आप अपनी कलम को और माजे..अध-कचरी कविताओं पर मैं नही लिख पाऊँगी। उस दिन मैं अपमान का घूँट पीकर रह गया था।"

"अब फिर...."

"तमाम लोगो के मध्य मैने भी चुटकी ली, किस भाषा की पत्रकारिता हेतु आपको सम्मान दिया गया है ?"

"तो उन्हाने क्या कहा ?" मेरे यह पूछने पर वह उठकर चला गया। किन्तु मुझे पूर्व में ही इन महाशय जी की हरकत पता लग चुकी थी—इसके उत्तर में उन्होने कहा था, "मै तो तीन-तीन भाषाओ मे पत्रकारिता करती हूँ। अतः, बेहतर हो कि आप यह उन सस्था वालो से ही पूछे कि उन्होने मुझे किसी भाषा हेतु सम्मानित किया था।" ●

राहत

का भओ बिटिया रूती काहे हउ ? मैंने रोती हुई पडोसन की बेटा से पूछा

बुआ अम्मा ने तुरत बुलाओ हइ उसने सिसकते हुए कहा ।

काहे, का हइ ? का भओ ?''

''बप्पा का कैंसर निकरो हइ ।''

''का ! ''मैं चौक पड़ी...किन्तु तुरन्त ही अपने को सभालते हुए उससे कहा, ''अरे ! अम्मा से कहिअउ घबरइबे की कोई बात नाई हइ...तुम चलउ हम अभई अइही ।''

मैंने अपने नवजात शिशु को दाई को थमाते हुए घर के अन्य कामो के विषय मे समझाया और शाल ओढ़ते हुए पडोसन के घर चली गयी ।

वहाँ पहुँचकर जो दृश्य देखा.. तो मै परेशान हो गयी.. हर सदस्य रो रहा था । मेरी आँखो मे भी आँसू आने को हुए, किन्तु मैने उन पर नियन्त्रण किया और कहा, ''भाभी ! ऐसा क्या हो गया कि... ''

''का बतामइ बिटिया...देखउ...।'' डॉक्टर की रिपोर्ट मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा, ''इनइ त कैन्सर बताओ अब का हुइ ही ?''

मैंने सरसरी तौर पर रिपोर्ट देखी. ढाढ़स बँधाया, ''भाभी ! घबराओ मत, आज साइस बहुत आगे है. मेरे परिचित कैसर स्पेशलिस्ट है, भैया को आज शाम वहीं ले चलते है..ईश्वर की कृपा से सब ठीक हो जायेगा ।'' मेरे कहने से सभी को थोड़ा धैर्य बधा । मगर भैया बोले, ''बिटिया ! कैंसर तो ला इलाज है...तुम क्यो झूठा ढाढ़स बँधाती हो ।'' मै अभी रिपोर्ट को ही गम्भीरता से देख रही थी; डॉक्टर की अटपटी पक्तियाँ पढ़ने की कोशिश कर रही थी.. तभी मेरी दृष्टि एक स्थान पर रुक गयी, देखा रिपोर्ट पर नाम तो किसी और का लिखा है । मेरे होठा पर मुस्कान तैर गयी । मैंने पूछा, ''भैया आपने किस चीज की जाँच करायी थी ?''

''गले के पास से छोटा मॉस का टुकड़ा दिया गया था ।''

''पर भैया यह रिपोर्ट आपकी नही है. यह तो लीवर कैसर की रिपोर्ट है...गलती से किसी दूसरे की रिपोर्ट आ गयी है ।...किसी को भेजकर अपनी रिपोर्ट मगवा ले । ईश्वर ने चाहा तो आपको कुछ नहीं निकलेगा ।'' लगा कि सबके चेहरे सामान्य हो रहे थे और ''मै फिर आऊँगी'' कहकर अपने घर लौट आयी । ●

ईर्ष्या

छोटे बेटे का विवाह-समारोह सम्पन्न हुआ, तो घर मे कुछ निकटतम अतिथि रह गए थे। वे सब भोजन कर रहे थे। श्वसुर भोजन करते हुए अपनी बड़ी बहू के ठडे एव सहनशील मिजाज के पुल बाँध रहे थे। विवाह-समारोह मे उसकी भूमिका की प्रशसा करते जा रहे थे कि उनकी पोती आयी और रिश्तेदारों के साथ बैठकर मॉसाहारी भोजन करने लगी। बड़ी बहू विशुद्ध शाकाहारी थी। अतः, उससे पूर्व उसकी बेटी मॉसाहार करे कि उसने लपक कर उसे उठा लिया।

अतिथियों के समक्ष बड़ी बहू का यह बर्ताव श्वसुर को अच्छा नही लगा। उन्होने कहा, ''बहू ! यदि शालू खाना चाहती है, तो उसे खा लेने दो।''

इतने मे नई-नवेली दुल्हन ने बहुत धीरे से आग्रह भरे स्वर मे कहा, ''दीदी ! जब सब कह रहे है तो खा लेने दीजिए।'' बड़ी बहू ने उसके वाक्य पर उसके चेहरे को बहुत गौर से देखा, तो उसे अपना सिंहासन डोलता-सा लगा। इधर शालू रो-रोकर हलकान हुयी जा रही थी- अपनी चिल्लाहट से पूरा घर सिर पर उठा लिया। इस स्थिति से श्वसुर का तनाव बढ गया। उन्होने समझाया,'' जब तुम्हारा पति और तुम्हारे ससुराल के लोग खाते है तो इसे क्यों रोकती हो ? तुम नहीं खाती, तो तुम्हे कोई जबरदस्ती तो नही करता। यह तो बच्चा है।''

श्वसुर का सम्मान करते हुए उसने बेटी को छोड़ दिया और वह अतिथियों के साथ पुनः मॉसाहार करने लगी। खाते-खाते एकाएक उसे पानी पीने की इच्छा हुयी तो उसने झट आकर माँ का हाथ पकड़ा, ''माँ ! पानी.।''

इसके पूर्व कि बेटी कुछ और कह पाती कि बहू का चाँटा पूरी ताकत से उसके मासूम कपोलो पर मॉ के निर्दयी हाथो की छाप छोड़ गया। वह चिल्ला उठी, ''मॉ !''

''हरामजादी ! अपने तो गंद-बला खा ही ली...छूकर मुझे भी गदा एव अपवित्र कर दिया।

श्वसुर ने बड़ी बहू का यह व्यवहार देखा, तो स्तब्ध रह गए.. वह कुछ न बोल सके और बच्ची को गोद मे लेकर कमरे मे बाहर हो गए। ●

जीवन का यथार्थ

मैं जब कभी मित्र के घर गयी पति-पत्नी को आपस मे बहस करते ही पाया। मेरा मित्र लेखक और पत्नी लेखन की घोर विरोधी। मैने उसकी पत्नी से कहा, "बहन ! लेखन कोई बुरा या अनैतिक कार्य तो नही... फिर आप क्यों नाराज होती है ?"

"आप स्वय लेखिका है......अतः, आप तो इनका पक्ष लेगी ही।"

"नहीं ! ऐसी बात नही है.....मै लेखिका होने से पूर्व एक नारी हूँ....इस नाते मै आपके साथ हूँ....फिर भी.. "

"फिर भी क्या ? यह जितना समय किताबे लिखने में लगाते हैं, उतना यदि अपने बिजनेस मे लगाएँ तो हम ज्यादा कमा सकते है। ....मगर ये तो सुनते ही नही।"

पति-पत्नी के बीच क्या बोलूँ......समझ मे नहीं आया। परन्तु आज जब उनके यहाँ गयी तो दृश्य बिल्कुल बदला हुआ था। मित्र लिखने मे व्यस्त था और पत्नी चाय दे रही थी। यह दृश्य देखकर मेरे मुँह से निकला, "भई ! आज यह उल्टी गंगा कैसे बह रही है ?"

"उल्टी नही बहन ! सीधी बह रही है।"

"मतलब ?"

"आज एक टी॰ वी॰ सीरियल बनाने वाले स्क्रिप्ट तैयार करने हेतु दस हजार रुपए अग्रिम दे गये है। काम जितना जल्दी हो जायेगा, शेष राशि भी उतनी जल्दी मिल सकेगी ....इसलिए मैंने कहा कि आप बैठकर जितना जल्दी हो सके इसे पूरा करे।"

"तो यह बात है...इतन दिन तक आप... ?"

"मेरा विरोध लेखन से नही ....मुझे तो घर चलाने हेतु पैसा चाहिए.....वह चाहे लेखन से आये या किसी अन्य बिज़नेस से . . क्योकि घर साहित्य-सेवा से नही, पैसे से चलता है।"

मुझे लगा मित्र की पत्नी भी अपनी जगह ठीक है......परन्तु मित्र भी अपनी जगह ठीक है, यदि वह साहित्य-सेवा नहीं करता होता, तो आज उसे यह काम भी कैसे मिलता ?" ●

बदलाव

पत्नी को उदास देखकर पति ने पूछा, "क्या बात है मीना. .आज तुम उदास क्या हो ?"

"कोई खास बात नही है. आप फ्रेश होकर कुछ खा-पी लीजिए...दिन भर ऑफिस मे काम करते-करते आप थक गए होंगे.. ।"

पत्नी की आत्मीयता ने उसकी थकावट को दूर कर दिया.. मुस्कुराते हुए उसने पूछा "बात क्या है ? कोई बात तो है.. मैने आज तक तुम्हे एसे उदास नहीं देखा. ।"

"कहा न. .कोई बात नही है..आप फ्रेश हो लीजिए...मै कुछ नाश्ता...लाती हूँ ।" जाती हुयी पत्नी का सतोष ने हाथ पकड़ लिया, "पहले बताओ ! क्या बात है ?"

"आप पुनः शहर में ही घर ले लीजिए ।"

"क्यो ? इस छोटे-से कस्बे मे मन नही लग रहा है..शायद इतने दिन बड़े शहर मे रहने के कारण...आखिर पिता जी के भी तो कुछ अरमान है... उनकी आज्ञा का पालन करने हेतु ही तो. .।"

बीच मे बात काटते हुए मीना ने कहा, " हाँ ! पिताजी ने ही तो कहा है कि हम लोग जब से यहाँ आए हैं परिवार की एकता सकट मे पड़ गयी है... इससे पूर्व तो एसी बात नही थी ।"

पिता के कान मे मीना की बात पड़ी तो वह संतोष के कमरे मे ही आ धमके, "बहू ने ठीक कहा है..मैने ही ऐसा कहा है ।"

"पिता जी ! आपने कहा है...मगर आपने ही तो मुझे घर लौटने हेतु बार-बार कहा था ।"

"वह ठीक है मगर...तब मुझे इस स्थिति की आशा नही थी. घर की अन्य बहुएँ इस छोटी बहू का रहन-सहन, खान-पान...बच्चो का रख-रखाव सहन नही कर पा रही है और वे नित्य-प्रति अपने पतियो के कान भरती रहती है...स्थिति और बिगड़े कि इससे पूर्व . ।"

"पिता जी ! आपकी बात मै समझ गया . आप चिन्ता न करे . आप भैया एव मझले भैया को आश्वस्त कर दे...मै एकाध माह मे पुनः शहर चला जाऊँगा...मैंने तो मात्र आपकी आज्ञापालन हेतु ही. .अन्यथा तो मीना एवं बच्चे यहाँ आने को तैयार ही नही थे ।"

"पिता अपनी पनियल आँखे लेकर अपने कमरे मे धीरे-धीरे चले जा रहे थे.. सतोष पिता की बेबसी पर भीतर-ही-भीतर दुःखी हो गया । ●

सहारा

आधी रात व्यतीत हो चुकी थी । मै गहरी नींद मे सोयी हुई थी । न जाने किस कारण मेरा नवजात पुत्र एकाएक चिल्ला पडा और मेरी नीद टूट गयी । मैं यह जानने का प्रयास करने लगी कि आखिर यह रोया क्यो ? अक्सर ऐसा तो नहीं होता । चूँकि नीद से पलकें बोझिल हुई जा रही थी, मैंने उसे अपनी छातियो से चिपका लिया और वह दुध पीने लगा । फिर न जाने क्या मुझे ऐसा लगा शायद उसे कही पेट मे दर्द ही न हो । अतः, यह सोच कर मै रसोई मे चली गयी और पानी मे अज्वॉयन डालकर खौलाने लगी ।

पानी जब काफी खौल गया तो मैंने उसे ठंडा किया और एक कटोरी मे लेकर उसे चम्मच से पिलाने लगी । मगर वह रोता ही जा रहा था । मै उसे पानी पिलाती और वह बार-बार उगल देता । उसकी इस हरकत पर मै झुझला उठी– "नही मानेगा अभी बताऊँ ।" इसके अतिरिक्त भी न जाने क्या-क्या कहने लगी । इतने मे दरवाजे के बाहर मुझे कुछ फुसफसाहट सुनाई दी और मै जोर से दहाडी ।"

"कौन है । इस वक्त ।" और मैंने लाठी उठाई कि देखूँ तो कौन है ?"

मेरे एव पुत्र के सवाद से बाहर जो भी था या थे यह समझ गए लोग जाग रहे हैं और मै अकेली नही हूँ... उनकी पदचापो से यह एहसास हुआ वह या वे भाग गए है । मैने राहत की साँस ली और मैने पुत्र की ओर ममतापूर्ण दृष्टि डाली तो मुझे ऐसा लगा कि मै अकेली नहीं हूँ, मेरे साथ मेरा पुत्र है जो बच्चा नहीं, पूरा मर्द है । मै पुत्र के विषय मे सोचती रही और मेरा पुत्र न जाने कब का गहरी नीद मे सो चुका था । ●

जुर्माना

मै टैम्पू से उतरी और उसे दस का नोट थमा दिया और शेष पैसों हेतु मैंने हाथ आगे बढा दिया । उसने अपनी जेबो तथा टैम्पो मे रेजगारी हेतु लटक रही थैली-सी में देखा तो कहने लगा "मैडम ! चैज नहीं है ?"

"नही ! सुबह-सुबह चैज कहाँ से आए ?" इतना कहकर मै उसकी ओर देखने लगी । वह अन्य सवारियो से पूछने लगा, "चेज है ?.. " फिर वह अन्य टैम्पू वालों से पूछने लगा । मगर हर कोई 'न' मे सिर हिलाने लगा । मुझे अपने झूठ पर ग्लानि हो आयी .चैज तो मेरे पर्स मे पर्याप्त था. मगर अब क्या हो मै तो मना कर चुकी थी..मेरे कारण टैम्पू मै बैठी सवारियाँ भी परेशान हो रही थी टैम्पू वाला तो परेशान था ही । मै उसकी भलमानसी के कारण जमीन मे धँसी जा रही थी । कोई उपाय नही सूझ रहा था । मैंने कहा, "तुम जाओ । फिर कभी मिलना तो शेष पैसे दे-देना, नही तो कोई बात नही ।"

"नही मैडम । यह कैसे हो सकता है इतना बडा बोझ लेकर मैं कैसे जीऊँगा ।" उसके इस वाक्य ने मुझे और बौना कर दिया मै अब क्या करूँ ? टैम्पू मे बैठी सवारियाँ कसमसा रही थी . मै भीतर-ही-भीतर धँसती जा रही थी ।

इतने मे एक टैम्पू आकर उसकी बगल मे रुका, "का धीमन् ! का बात हो.. कइसन खड़ा हो ?"

"अरे यार । दस रुपइया का चैज नही मिल रहा है ।"

उसने अपने टैम्पू मे लटक रही थैली मे हाथ डाला और सिक्के गिनते हुए बोला "अरे यार ! एक रुपइया कम हऊ ।"

मै झट् स बोली, "कोई बात नही चलेगा ।"

टैम्पू वाला अपने पैसे लेकर आगे बढ गया. मै सोचने लगी, चलो ठीक ही हुआ, मुझे कुछ जुर्माना तो लगना ही चाहिए था. एक रुपया जुर्माना कम ही सही....मगर फिर भी " और मै आगे बढ़ गयी । ●

लौटते हुए

पुत्र उत्पन्न होने के पश्चात् मेरी दिनचर्या कुछ ऐसी हो गयी है कि कार्यालय के अतिरिक्त अन्य किसी कार्य हेतु समय ही नहीं बच पाता ; यहाँ तक कि कार्यालय मे भी नजर प्रायः घडी की ओर चली जाती है। लगता है कब पाँच बजे और मै बेटे के पास पहुँचूँ। अधिक उम्र मे सन्तान होने के कारण शायद मेरी यह स्थिति है।

एक माह पूर्व के दो पत्र, जिनका उत्तर भी नही दे सकी थी। आज अचानक पुस्तक मे रखे मिल गये तो सोचने लगी कि पुत्र-मोह मे बहुत-सी औपचारिकताएँ छूटती जा रही है। ..लिखना-पढना... .सभा-संगोष्ठियाँ.. सब कुछ छूट रहा है.. क्या एक दायित्व हेतु अन्य दायित्वो से पलायन करना होगा ? सोचते-सोचते एक अजीब-सी बेचैनी ने घेर लिया।

इतने मे मेरी दोस्त अर्चना आ गयी, "मदिरा क्या सोच रही हो ?"

"कुछ नही... ।" और बिना कुछ छिपाये सब बता दिया।

"तुम दुनिया की पहली या अन्तिम माँ तो नही हो.. किसी भी मामले मे अतिरिक्त सावधानी घातक होती है... व्यक्ति अकेला रह जाता है और अकेला व्यक्ति समाज में एक कदम भी नही चल सकता। ऊपरी या बाहरी मन से ही सही, अपने अन्य दायित्वो का नही छोड़ना चाहिए। तुम तो कार्यालय की एकमात्र ऐसी कर्मचारी हो, जो न कभी लेट आयी और न समय से पूर्व गयी. ..मगर आजकल तो....।"

उसका अन्तिम वाक्य मुझे डस गया ..."तो क्या, मै बदल गयी, ... नही. ..नही ! ऐसा नहीं होगा ! मै अपने दायित्वो का निर्वाह करूँगी....,अवश्य ही करूँगी।" अकस्मात् मेरे मुँह से निकल गया। सामने नजर उठाकर देखा तो अर्चना जा चुकी थी। ●

रोजगार

मेरे पिता आध्यात्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे । अतः ज्योतिष-विद्या मे भी उनकी प्रगाढ़ आस्था थी । मै चूँकि अपने समय के साथ चलना पसन्द करती हूँ, अतः उनसे सहमति होते हुए भी उनकी भावनाएँ आहत न हो, इच्छा-अनिच्छा से उनकी प्रत्येक बात का सहज ही समर्थन कर देती थी ।

आज वे मुझे ज्योतिष की सार्थकता के विषय मे बता रहे थे । मै चुपचाप उन्हे सुन रही थी । उन्होने मेरे चेहरे के हाव-भाव पढ़ते हुए पूछा, "मालिनी ! तुम मेरी बातो से सहमत नही हो क्या ?"

"नही ! ऐसी बात नही है..किन्तु.."

"किन्तु क्या ?"

"पिताजी ! ज्योतिष विज्ञान की एक शाखा है. इसकी सार्थकता भी है..यह भी मानती हूँ । किन्तु इसके तथाकथित जानने वाले लोगो की जानकारी के विषय मे मुझे सन्देह है ।"

अभी मै इतना ही कह पायी थी कि पिता के ज्योतिषी मित्र आ गए, "पिता-पुत्री म ज्योतिष का लेकर क्या चर्चा चल रही है ?"

पिताजी ने मेरे विचारो से उन्हे अवगत करा दिया। मेरे विचारो के विषय मे जानकर वह भडक उठे, किन्तु सभल गए । बोल, "लाओ ! मै तुम्हारी समस्याओ का समाधान कर दूँ ।"

मुझे कार्यालय जाने की जल्दी थी, मैने टालने हेतु कहा, "चाचा ! आप अपनी समस्याओ का समाधान तो कर नही पाते...मेरी क्या.....?"

मेरी बात को बीच मे ही काटते हुए बोले, "तुम्हारी समस्याओ के समाधान मे ही मेरी समस्याओ का समाधान है ।"

"मतलब !"

"यही मेरा रोजगार है ।"

मैने कोई उत्तर देना उचित नही समझा और मै अपने कार्यालय चल पड़ी । ●

सीमा

उस मेढक का जन्म कुएँ मे हुआ था । वही पला-बढ़ा था । वह और मेढको से जरा ज्यादा तेज था । खूब उछल-कूद मचाता था । उस दिन वह काफी उछल-कूद मचा चुका था और शान्त होकर बैठा ही था कि उसकी नजर ऊपर कुएँ की मुडेर पर गयी ।

कुएँ की मुडेर पर चार-पाँच चिड़ियाँ बैठी थीं । वे आपस मे सटकर बैठी थीं और जब न तब चुहल करती हुई एक-दूसरे को धक्के मारकर छेड देती थीं । मेढक ने काफी देर तक देखने के बाद उन चिड़िया से कहा, ''तुम लोग कितनी भाग्यहीन हो ? तुम्हे जगह का इतना अभाव है कि ठीक से बैठ भी नही सकती । मुझे देखो ! कितनी खुली जगह मे रहता हूँ कितनी जगह है यहाँ इस कुएँ के भीतर ..।''

चिड़ियों ने मेढक पर व्यग्य भरी नजर डाली । चुहलबाजी मे एक दूसरे को चोंच मारी । उन चिड़यो मे जो सबसे छोटी थी, उसने मढक से कहा, ''हॉ भाई मेढक ! तुम ठीक कहते हो । तुम्हारी तरह हमारा भाग्य कहाँ कि उतनी बड़ी जगह मे हम रह सके । तुम कितनी आजादी से चक्कर मारते हो ।''

और, सभी चिड़ियाँ पंख फैलाकर आकाश मे उड़ गयी । ●

भीड़ से अलग

एक देश के राजा को अपने मन्त्री का यह कहना झूठ लगता था कि लोग अपनी पत्नी के कहने पर चलते है। मत्री के कथन को जाँचने के लिए राजा ने एक दिन राज्य के तमाम विवाहित पुरुषो को बुलाया और उनसे कहा, ''तुम लोग मेरे प्रश्न का सही-सही उत्तर दना। यदि कोई झूठ बोला तो सख्त-से-सख्त सजा मिलेगी।''

प्रश्न था कि पत्नी के कहने पर कौन-कौन चलता है ? जिनका उत्तर 'हाँ' मे था, उन्हे राजा ने बाय तथा जिनका उत्तर 'नही' मे था, उन्हे दाँयें खडा होने का निर्देश दिया गया।

सभी मनुष्य बाये खड थे। केवल एक व्यक्ति दाये था। राजा ने उसकी प्रशसा करते हुए कहा, ''मुझे प्रसन्नता है कि मेरे राज्य मे एक तो ऐसा व्यक्ति है जो अपनी बुद्धि से काम करता है। अच्छा। अब तुम इन मूर्खों को बताओ कि तुम अपने कार्यो को कैसे करते हो ?

उस आदमी ने उत्तर दिया, ''श्रीमान्। जब मै घर से चला था तब मेरी पत्नी ने कहा था कि भीड़ से अलग रहना। ●

अपना-अपना जल

ऋषि उस समय जाप कर रहे थे। उनकी अधमुन्दी आँखें दूर क्षितिज के किसी बिन्दु पर स्थिर थीं। उसी समय एक बहेलिया आया और दण्डवत् कर सामने खड़ा हो गया। ऋषि के किसी शिष्य ने उसे सामने की खुली जमीन पर बैठ जाने हेतु सकेत किया। बहेलिया बैठ गया। थोड़ी देर बाद एक गरीब किसान आया और झुककर दण्डवत् किया। उसे भी सामने बैठ जाने का सकेत मिला।

उस दिन कुछ अपूर्व सयोग ही था कि किसान के बैठ जाने के थोड़ी दर बाद नगर-सेठ आया और उक्त प्रक्रिया दुहरायी गयी। नगर-सेठ के बैठ जाने के बाद राजा भी आया। राजा को मालूम था कि ऋषि के आश्रम मे लाव-लश्कर लेकर पवेश करना वर्जित है। अत:, अकेले ही आकर प्रणाम किया। उन्हे भी सामने बैठ जाने का इशारा मिला। राजा ने देखा उस जगह एक ही पक्ति मे बहेलिया, किसान और नगर-सेठ बैठे है। वैसे उस पक्ति मे बैठते समय नगर-सेठ के मन मे भी अपमान-बोध हुआ था, किन्तु व्यवसायी होने के कारण मन मारकर काम करने की उसकी आदत थी, अत: बैठ गया था। लेकिन राजा का अहम् जागृत हो रहा और वह बैठा नहीं। थोड़ी दूर हटकर चहलकदमी करता रहा।

ऋषि का जाप खत्म हुआ। उन्होने प्रफुल्लित मन स बैठे बहेलिये और किसान को देखा। मुँह लटकाये नगर-सेठ पर दृष्टि डाली और राजा को भृकुटि ताने चहलकदमी करते देखा। ऋषि सब समझ गये।

उन्होने सबको अपने निकट बुलाया और कहा, "मै सब के द्वारा लाये हुए जल का पान करूँगा।" पास मे बहती नदी से थोड़ा-थोड़ा पानी ले आएँ। ऋषि का कमण्डल सामने रखा था, उन्होने सबको उसमे पानी डाल देने का इशारा किया। सबने वैसा ही किया। तब ऋषि ने कहा, "राजन ! आप महान् हैं, नरपति हैं। मै पहले आपके द्वारा लाया जल पीऊँगा। कृपया कमडल से अपना जल निकालकर मुझे दे दीजिये।"

राजा बुद्धिमान था। ऋषि के चरणों मे झुक गया। "ऋषिजर ! मुझे क्षमा कर मै मोहग्रस्त हो गया था। राजा, नगर-सठ, किसान और बहेलिया समाज क दिये ओहदे है। प्रकृति ने तो उन्हे सिर्फ मनुष्य बनाया है- जैसे नदी का पानी, वह चाहे राजा लाये या बहेलिया, एक ही होता है। ●

अवमूल्यन

बस्ती के किनारे स्थापित एक झोपडी की दीवार के छेद मे से वर्षा का पानी भीतर घुसता आ रहा था। झोपडी का मालिक हाथ मे खुरपा लिए मिट्टी काट-काटकर छेद बन्द करने का प्रयास कर रहा था।

झोपडी के बाहर एक नेवला और एक साँप अपना वैमनस्य भूलकर एक ही स्थान पर बैटकर अपनी जीवन-रक्षा के विषय मे सोच रहे थे। नेवले ने साँप से कहा, ''वो सामने देखो। एक बिल है, तुम आसानी से उसमे घुसकर अपनी रक्षा कर सकते हो।''

''बिल छोटा है... मै कैसे घुस पाऊँगा।'' इतना कहते हुए उसकी दृष्टि छेद के दूसरी ओर चली गयी। उसने पुनः नेवले से कहा, ''भीतर तो एक आदमी है.. उसके हाथ में धार वाला हथियार भी है।''

नेवले ने कहा, ''अरे ! आदमी है, तो क्या हुआ। अभी तो जान बचानी है। और अगर आदमी कुछ कहे तो तुम उसे डस लेना। तुम तो स्वय विषधर हो, एक ही दश मे तो आदमी...''

कुछ सोचते हुए साँप ने कहा, ''वो तो ठीक है . पर, मेरे दंश के बाद भी आदमी तुरन्त नही मरता। मेरे विष की तो दवा भी है, मगर आदमी के. ।

''आदमी डसता तो नही . ।''

''खुरपी की ओर सकेत करते हुए साँप ने सहमते हुए कहा, ''वह डसता तो नही, काट डालता है, टुकडे-टुकडे कर देता है। ●

रास्ता

आज का अखबार देखते-देखते मेरी दृष्टि एक समाचार विशेष पर आकर टिक गयी। मै उसे काफी ध्यान से पढने लगी। पढ़ने-पढते मुझे हल्के-हल्के हँसी भी आने लगी। मै सोचन लगी, महेश की अभी उम्र की क्या है ? अभ्भी उसन लिखा ही कितना हे ? कैसा लिखा है यह तो अलग बात है... इसपर तो आलोचक और पाठक साचे... इतनी जल्दी 'अभनन्दन-ग्रन्थ'। मैं अभी इन सोचो मे डूबी हुयी ही थी कि छोटी बहन ने डाक लाकर दी उसमे एक छोटा-सा पैकेट था. मेरी उत्सुकता बढ़ गयी.. मैने उसे फटकारा बाला, देखा वह भी एक अभिनन्दन-ग्रन्थ ही था जो दिल्ली के एक युवा साहित्यकार पर केन्द्रित था। मैन उसे एक तरफ रख दिया। उस देखने की भी इच्छा न हुयी। डाक मे आये अन्य पत्रो को देखने लगी। एक लिफाफा जो बड़ा आकर्षक-सा लग रहा था, उसे खोला। वह मुद्रित पत्र था। आरभ मे मेरा नाम लिखा हुआ था-- एक साँस मे पढ़ गयी।

मन खिन्न हो उठा। यह भी अभिनन्दन-ग्रन्थ से जुड़ा पत्र था बदायूँ की साहित्यिक मित्र सुशीला पर अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है, उस पर एक संस्मरणात्मक लेख चाहिए। क्या लिखूँ..कभी भेट हुयी नही। उसकी तीन कृतियाँ ही प्रकाश मे आयी है... वह भी देखने को नही मिलीं... पता नही अभिनन्दन की इतनी जल्दी क्या है ? अभिनन्दन-ग्रन्थ यदि न भी छपे तो क्या होगा ?

मेरा ध्यान पुनः उस पत्र की ओर चला गया। क्या उत्तर दूँ ? क्या करूँ ? क्या लिखूँ ? मेरा अन्तर्द्वन्द्व बढ़ता ही चला गया। सिर की नसे खिचने लगी। क्या मुझे केवल सबधो के कारण ही सुशीला के अभिनन्दन-ग्रन्थ हेतु कुछ भी लिख देना चाहिए... नही ! नही !! यह मुझसे नही होगा . इतने मे मेरी दृष्टि पास मे रखी एक पत्रिका पर जा पडी। मै उसे उलटन-पलटने लगी। उलट-पलट कर देखा तो एक लघुकथा पर नज़र चिपक गयी। जिसका साराश कुछ यो था कि अपन विवेक के विरूद्ध कुछ भी नही करना चाहिए। बस मुझे रास्ता मिल गया... और मैने संकल्प ले लिया। इस प्रकार के ओछे कार्यो मे किसी भी दशा मे योगान नही दूँगी।

मुझे लगा मेरा शरीर . मेरा मन शनैः शनैः कुछ हल्का होने लगा था। ●

परख

साहित्यिक समारोह का जैसे ही मध्यान्तर हुआ और साहित्यार बन्धु खाने की ओर बढ़ने लगे, सजेश मेरा हाथ पकड़कर बाहर ले आया ।

मैंने कहा, "ये क्या तरीका है.....सबके बीच मे तुम इस प्रकार मेरा हाथ पकड़कर ..लोग क्या कहेंगे ?"

"अरी मेघना ! लोगों को गोली मारो . वे तो हर हाल मे कुछ-न-कुछ कहते ही रहेंगे . चलो ।"

"कहाँ चलें ! भोजन तो कर ले ।"

"भोजन ही तो करना है.. .होटल मे कर लेते है. .थोडी दूर पर, ऑटो से चलेंगे इस प्रकार हमें थोड़ा एकान्त भी मिल जायेगा ।"

"तुम्हारी यह बेसब्री मुझे कतई पसन्द नही . यदि भैया या अन्य किसी पारिवारिक सदस्य ने देख लिया तो ...।"

"तो क्या ! हमारी शादी और जल्दी कर देंगे ।"

"अगर तुम ऐसा ही करोगे, मै तुमसे शादी भी नही करूँगी तुम्हारा यह जिद्दीपन मुझे कतई पसंद नही ।"

मेरी इस बेरुखाई से वह रुष्ट हो गया और अकेला ही मुख्य-द्वार से बाहर हो गया । मै भोजन-स्थल की ओर चली गयी. प्लेट उठाई, मन नही हुआ अतः चुपचाप पुनः हॉल मे आकर अपने स्थान पर बैठ गयी । सजेश के जाने से मेरा मन कतई नही लग रहा था ।

कार्यक्रम अभी शुरु भी नही होने पाया था कि सजेश आ गया उसे देखते ही मेरा चेहरा खिल उठा । उसने बर्फी का एक टुकड़ा मेरी ओर बढ़ाया । मैंने कहा, "तुम खा लो " वह नही माना । मैंने कहा, "अच्छा ! पहले तुम खा लो ।"

मेरी उस बात पर वह उखड़ गया, "लो पहले मै ही खा लेता हूँ,.. इसमे जहर नही है ।" उसकी बात पर मुझे हँसी आ गयी । वस्तुतः, मै जानती थी, उसने खाना नही खाया होगा .इसलिए मैंने ऐसा किया था ।

उसने मेरी ओर देखा । लगता है तुमने भी खाना नहीं खाया है । इतना कहने के साथ ही उसने बर्फी का दूसरा टुकडा झट-से मेरे मुँह मे डाल दिया । मै अन्य उपस्थित लोगो की परवाह किये बगैर हँस पड़ी और मेरे मुँह से अकस्मात् निकल पड़ा, "तुमसे बेहतर साथी कहाँ मिलेगा !" ●

शीशे के घरो वाले

मेरे घर पर बैठे अनेक साहित्यिक मित्र साहित्य के किसी मुद्द पर चर्चा कर रहे थे। इसी क्रम मे चाय आ गयी और बातचीत साहित्य से हट गोसिप की ओर बढ गयी। चाय की चुस्कियो के मध्य एक सज्जन कहने लगे, "आजकल रजनो न जाने किन-किन लोगो के साथ घूमतो-फिरती रहती हे ?"

"तुम्ह क्या परेशानी हैं ? वह अपना जीवन जीने हेतु स्वतत्र हे .वह जाने या उसके घरवाले जाने ?" मैंने कहा।

"फिर भी..?"

"मालती जी। आप चाहे कुछ भी कहिए. रजनी को निरकार से साथ अधिक मल-जोल नही रखना चाहिए अच्छा नही लगता ।"

"क्यो अच्छा नही लगता .आप कौन हाते है, उसके ?"

"वो. .बस ..कुछ नही . .यो ही।"

"दरअसल आपकी पीडा यह नही है कि वह किस-किस के साथ घूमती है. रहती है. आपकी पीड़ा दरअसल यह है कि वह आपके साथ नही घूमती . आपको घास नही डालती...।" अब तक मुझे उसके दोहरे चरित्र पर क्रोध आने लगा था।

"आप अपने साहित्य मे बातें ता करते हैं.. नारी-मुक्ति की और नारी सशक्तीकरण की. .बनते है प्रगतिशील.. विचार इतने दकीयानूसी. आपको पता हे । आपकी बहिन किस-किस के साथ घूमती है... सिनेमा देखती है ? नही मालूम. तो जान लीजिए. यह बैठा हे- मोनीश ! ये दोनो आपस मे प्रेम करते है, समझे ।"

"यह आप क्या कह रही है ? उसका स्वर शक्तिहीन हो चुका था। उसकी ओर देखते हुए मेने कहा, "जिसकी घर स्वय कॉच के बने हो-- दूसरो के घरो पर पत्थर नही फेकते।" ●

अपने-अपने आदर्श

आज एक पत्रकार मेरे कार्यालय मे आये और आत ही पूछने लगे, "मैडम ! आपने हमारे समाचार-पत्र के लिए कोई समाचार भेजा था ?" उत्तर देने से पूर्व मैने अपने चपरासी को चाय लाने हेतु भज दिया था ।

"भेजा ता था परसो साधक जी के काव्य-सग्रह 'नदिया के पार' पर विचार-गोष्ठी थी, उसमे नगर क प्राय. सभी ख्यातिलब्ध आलोचक उपस्थित थे ।"

"देखिये ! जब भी गोष्ठी हो.. गोष्ठी के बाद शाम को मुझे फोन कर दिया कीजिए, .. समाचार आ जायेगा ।"

"वा तो ठीक है . मगर यह भी कोई बात हुई ।"

"क्या कीजिएगा मैडम ! आजकल सब ऐसे ही चलता है । अब आपसे क्या छिपाना. आप तो जानती ही है । अधिकाश राजनीतिज्ञ प्रतिमाह पॉकेट खर्च देकर पत्रकारो को खरीदे हुए हैं, अतः वह पहले उनको देखे या ... ?"

"क्या यही पत्रकारिता है ?"

"आज की पत्रकारिता तो यही है... अब गणेश शकर विद्यार्थी का युग नही है. आज अर्थ का युग हे, जहाँ सिर्फ रुपया बोलता है,रुपया. ।"

"जब आप जैसे युवा एव तेज-तर्रार पत्रकार भी यही सोचते है.. तब तो मुझे कुछ नहीं कहना है ।"

"आप कहिए या मत कहिए.. इस चक्कर मे तो मुझे तीन-तीन अखबारो से त्याग-पत्र देना पडा है ।"

उस आड़े वक्त मे कोई काम नही आता । अब मै ऐसी भूल नही करूँगा कि मुझे पुनः त्याग-पत्र देना पडे ।"

अब तक मेरा मन कसैला हो चुका था... मैने कहा, "आप अपने कर्त्तव्य मे गिरे तो गिरे, किन्तु मै समाचार छपवाने हेतु फोन आपको नही करूँगी ।"

आमन्त्रण जैसे भेजा जाता है... वैसे ही भेजा जाता रहेगा ।... समाचार भी भेजा जाएगा ।. . छापें, या न छापें.. हमारा अभियान जारी रहेगा ।" मेरी तल्खी सुनकर वह बिना चाय पिये ही लौट गय । ●

बाजारवाद

बहुत दिन हो गए थे, वर्षा से भेंट नही हुई थी। आज रविवार था, सोचा मिल आती हूँ। मै उसक यहॉ पहुँची तो मेरी प्रसन्नता का पारावार न रहा। उसके यहॉ टी० वी० फ्रीज नया-नया सोफा आदि देखकर मैने तत्काल उसे बधाई दी। मेरी बधाई पर उसने कहा, "अरे भई। बधाई किस बात की ?" "कमाल करती हो ! यह कलर टी० वी० फ्रीज, और सोफा पूरा घर चमक रहा है।"

"चमक क्या खाक रहा है ? किश्त देते-देते हम दोना मे से एक का वेतन तो उसी मे चला जाता है। घर तक चलाना मुश्किल हो रहा है।"

"क्यो ! ऐसा क्या है. सुविधा भी ता है . सुख भी तो तुम उठा रही हो।"

"मुझे कह रही हो, तुम क्यों नही किश्तो पर कुछ ले-लेती ?"

"तुम तो जानती हो... मै क्रेजी नही हूँ. गॉव की रहने वाली हूँ.. इन सब की आदत नही रही.. यो भी मुझ पर घरेलू जिम्मे अधिक है।"

"तुम ही अच्छी हो . कोई टेंशन नही ।" "एसा नही . ।" "ऐसा नहीं है.. टेंशन तो है, बच्चो को पढ़ाने का अच्छी शिक्षा देने का।"

यह सुनकर वर्षा गम्भीर हो गयी. समय पर फीस न देने पर उसके बेटे का स्कूल से नाम काट दिया गया था। इतने मे उसका बेटा मेरे सामने आ गया। उसे देखकर मैने पूछा "क्यो रिंकू। आज स्कूल नही गए ?"

इससे पूर्व कि रिंकू कुछ कहता। वर्षा बोल पडी, "इसका स्कूल जाना, कलर टी वी. , फ्रीज और सोफे की भेट चढ़ गया।" और वह उदास हो गयी। ●

दृढ़ निश्चय

एक बड़े साहित्यकार जब इस नगर में स्थानांतरित होकर आये तो उन्होंने कुछ साहित्यकारों को अपने यहाँ अवकाश के दिन भोजन पर आमंत्रित किया । मैं भी आमंत्रित थी ।

खाना लग गया । मगर यह क्या ! भोजन के ठीक पश्चात् एक बोतल खुली, एक अपरिचित-सी दुर्गन्ध का आभास हुआ, बोतल पर लगे लेबल से मेरी समझ में आया कि यह विदेशी शराब है । सभी के गिलासों में उसे डाला जाने लगा । मेरी ओर भी बढ़ाया, "जी । मैं नहीं लेती ।'

"यदा-कदा थोड़े में क्या हर्ज है ?"

"मैंने कहा न ! मैं नहीं लूँगी ।"

एक सज्जन ने पानी के गिलास में चम्मच से कुछ बूँदें डाल दीं, "अच्छे साहित्यकार के लिए यह आवश्यक है । अब इतने में कोई हर्ज नहीं, साथ तो देना ही चाहिए ।"

मैं बहुत ही दुविधा में फँस गयी थी. कि बत्तीस दान्तों के मध्य जीभ-सी स्थिति में थी । एक बार तो मन में आया कि दो बूँदों में क्या होगा दवा की तरह पी लूँ । किन्तु अगले क्षण मुझे लगा कि यह तो एक तरह से उनके कार्य को स्वीकृति प्रदान करना है । मैंने गिलास उठा लिया और खड़ी हो गयी, दो क्षण रुकी फिर एक झटके से गिलास को जमीन पर दे मारा और यह कहते हुए बाहर निकल गयी, "लानत है ! ऐसे साहित्यकारों को जो शिष्टता की मर्यादा तक भी नहीं समझते ।" ●

यथास्थिति

बच्चे के जिद करने पर मै उसे उसके इच्छित स्कूल म ले गयी। मैने प्राचार्य से कहा, "मे एक लेखिका हूँ। मित्रता मेरा नाम है, मेरा बेटा आपके स्कूल मे पढना चाहता है. मुझ क्या करना होगा ?"

"ऑफिस से एक फॉर्म ले लीजिए, उसे भर दीजिए कल इसकी जॉच परीक्षा होगी। पास होने की स्थिति मे एडमीशन हो जाएगा, फी आदि जमा करा दे।. बस"

"कितनी फीस लगेगी ?"

"पॉच हजार, तीन-सौ पच्चीस रुपए।"

"इतनी फीस !"

"बच्चे को अच्छे स्कूल मे पढाना है, तो !"

" मगर मै तो एक लेखिका हूँ..लेखन से जुडे लोगो की स्थिति को तो आप भली-भाँति जानते ही है... मै तो एडमीशन के समय कितनी भी शक्ति लगाकर चार-पाँच सौ से ज्यादा नही दे।"

मेरी बात पूरी हो, इससे पूर्व उन्होने चपरासी को बुलान हेतु घटी का बटन दबाया। घटी की ध्वनि सुनते ही चपरासी आ गया। उसे देखते ही दहाड़े "सुनो ! तुम बिना जान-समझे कैसे-कैसे लोगों को अन्दर भेज देते हो. जरा देख तो लिया करो।"

इतना सुनते हुए मै उठकर बाहर चली आयी। मुझे गुमसुम देखकर मेरे बेटे ने मुझे टोका, "माँ ! एडमीशन हो गया ?"

"नही बेटा ! जब तक हम आजाद नही होगे तब तक स्थिति यही रहेगी।"

"माँ ! मास्टर साहेब ने तो पढाया था, हम आज़ाद हो चुके है।"

"बेटे ! आजाद कहाँ हुए ? पहले गोरो के गुलाम थ और अब कालों के स्थिति तो जहाँ की तहाँ ही है।" ●

विरोध

सदैव की भाँति इस वर्ष भी कॉपी जाँचन हेतु आमत्रण प्राप्त हुआ । प्रसन्नता हुई कि चलो, चार-पॉच हजार की आमदनी तो हो जाएगी, घर का कुछ अतिरिक्त काम हो जाएँगे । मैंने स्वीकृति दे दी । चूँकि उसी दिन मूल्याकन शुरू होना था, मै निर्धारित स्थल पर पहुँच गयी ।

औपचारिकताएँ आदि पूरी करने के पश्चात् कॉपियो का बंडल मुझे मिल गया । मै कॉपियाँ जॉचने लगी ।

मै अभी कॉपियॉ जॉच ही रही थी कि वहॉ के केन्द्र-अधीक्षक ने मुझे एक स्लिप दी जिसमें कुछ रोल न० लिखे हुए थ । उन्होंने कहा, "मैडम । ये सभी बड़-बड़ पिताओ के पुत्र है, अतः जरा देख लीजिएगा ।"

उनकी बात सुनकर मेरे कान खडे हुए । मैंने पूछा, "मै समझी नही ।"

"इसमे समझना क्या है ? इन्हें कम-से-कम अस्सी प्रतिशत अक दे ही दीजिएगा ।"

"मै दुविधा मे पड गयी इन बड़ पिता के पुत्रो को यदि अस्सी प्रतिशत अंक दे दूँ, तो जो छात्र वाकई उसके योग्य होंगे उनका क्या होगा ? उनके साथ तो अन्यान्य हो जायेगा एक शिक्षक होने के नाते क्या मुझे अपनी नैतिकता छोड़नी होगी ?"

कॉपी जॉचते-जॉचते मेरे हाथ रुक गये... और अधीक्षक महोदय को अपनी असमर्थता का कारण देते हुए आवेदन दे-दिया और मै तत्काल घर लौट आयी । ●

सबक

भूपेन्द्र जी का टेलिफान आया, ''बेटो ! जरा चली आओ ! तुम्हारी आण्टी बहुत बीमार है.. मै बूढा आदमी समझ मे नही आता, कि क्या करूँ ?''

''घर में और कोई नही है क्या ?''

''तुम तो जानती हो, हमारे एक ही तो बेटा है, वह भी अपने परिवार के साथ इग्लैण्ड मे रहता हे ।''

''उनको सूचना नही दी ?''

''उसने कहा कि आप कोई नौकर रख कर उनकी सेवा करवा लीजिए.. अवकाश मिलने पर.. ।''

''आपको यहाँ वह नौकर था न.. क्या तो नाम था.. शायद दीनू ! वह कहाँ है ?''

''बिडम्बना तो यही है कि कल रात ही उसके पिता का फोन आया था. वह बीमार है । इतना सुनते ही मेरे लाख रोकने पर भी वह यह कहकर चला गया कि मैं पहले अपने पिता को देखूँ या .।'' इसके बाद मै उसे नही रोक पाया और दीनू के पिता के भाग्य से मुझे ईर्ष्या हो आयी ।''

''खैर । मै आती हूँ किन्तु मै भी तो ज्यादा समय नही दे पाऊँगी . मेरा बेटा अभी छोटा है.. बहुत देर तक उससे अलग नहीं रह सकती आज उसे मैं नही देखूँगी. तो कल वह भी मुझे देखेगा ?''

मेरी बात सुनकर वह रो-से पड़े । बोले, ''बेटा ! तुम ठीक ही कहती हो । अकेला पुत्र था, सोचा अच्छी-से-अच्छी शिक्षा दिला दी जाए और उसे बचपन से ही हॉस्टल मे डाल दिया । नतीजा ! आज उसे हमसे कोई आत्मीयता नही है.. एक रिश्ता है, उससे अधिक वह यही रहकर ही नही समझता था, तो अब इतनी दूर रहकर वो क्या समझेगा ?''

उनकी पीड़ा सुनकर मैने फोन रख दिया और उसके यहाँ जाने हेतु तैयार होने लगी । ●

मासूम

मेरा भतीजा गाँव से आया हुआ था। मैंने उसे सब्जी लाने हाट भेजा। लगभग दो घण्टे बाद वह लौटा, उसके हाथ मे खाली झोले लटक रहे थे। मुझे बहुत हैरानी हुई। मैंने पूछा "विवेक! तुम तो सब्जी लाने गए थे... फिर ये खाली झोले क्या हुआ?"

"बुआ! यहाँ तो सब्जी इतनी महँगी है कि हम कैसे खरीदते?"

"महँगी! मतलब?"

"नेनुआ बारह रुपए, परवल सोलह रुपए, आलू आठ रुपये, बोरा दस रुपए, बैगन बारह रुपए किलो मिल रहे थे।"

"तो?"

"हमारे यहाँ तो नेनुआ तीन रुपए, परवल चार रुपए, आलू पन्द्रह रुपए पसेरी, बोरा तीन रुपए, बैगन तो दो ही रुपए किलो मिलते है. . अब तुम ही बताओ. .मै कैसे खरीदता?"

मुझे उसकी मासूमियत पर हँसी आ गयी...चूँकि खाना बनने में देर हो रही थी. मुझे समय पर कार्यालय भी पहुँचना था। अतः, मैंने दाल बीननी शुरू कर दी। विवेक मुझे देख रहा था और मै उसका चेहरा देख-देखकर अपनी हँसी नही रोक पा रही थी। ●

